* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

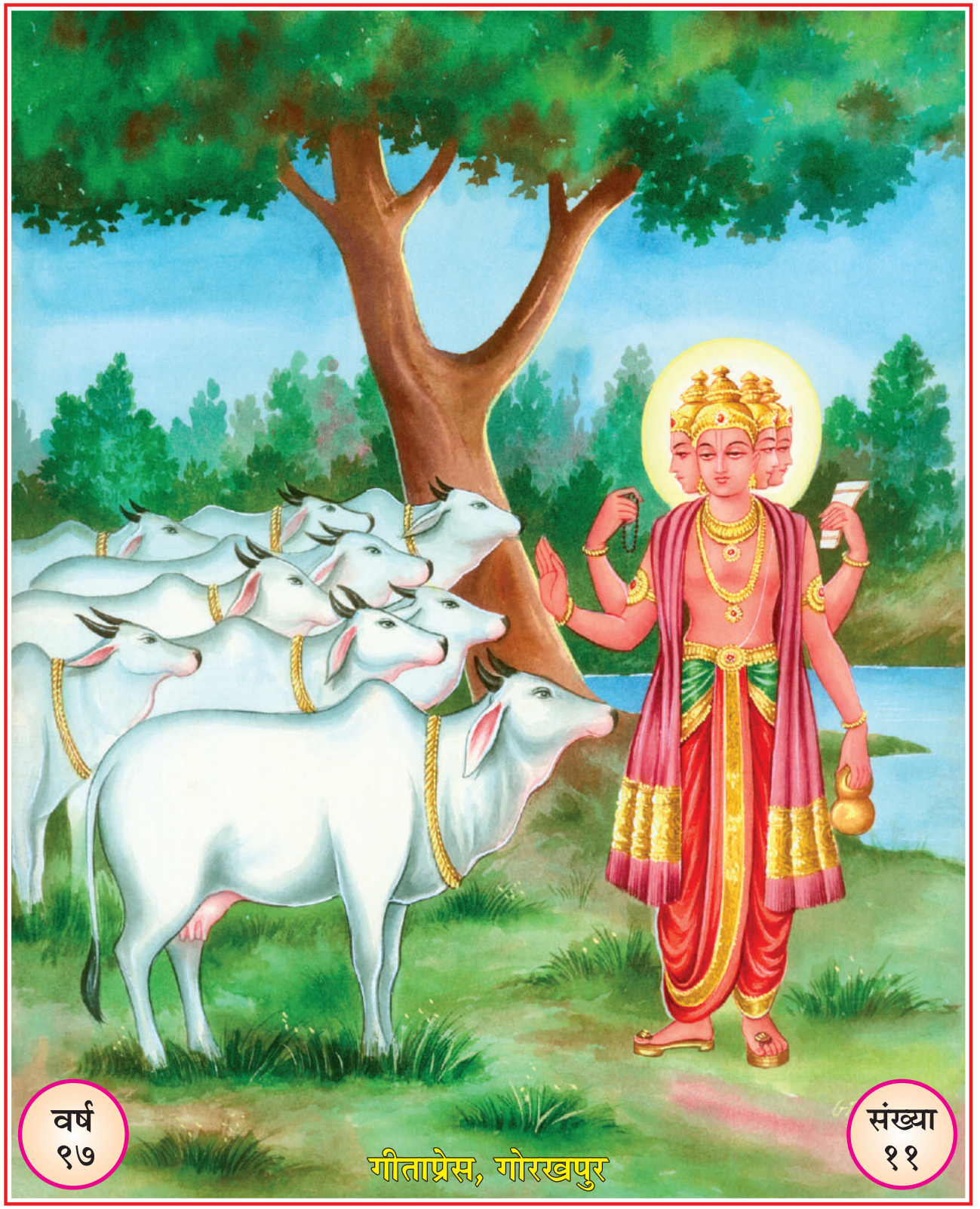

वर्ष ९७

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ११

ब्रह्माजीका गायोंको वरदान

सूर्य-स्तुति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

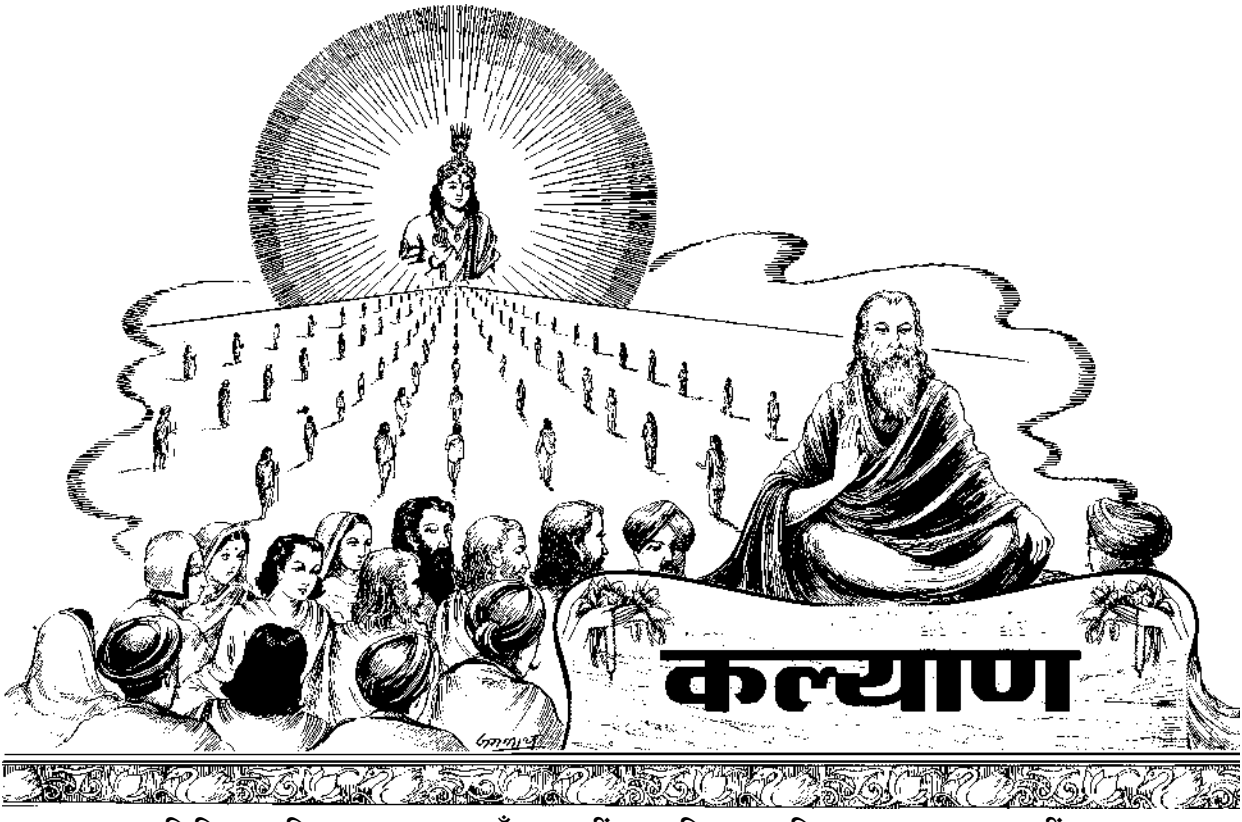

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

[रामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, नवम्बर २०२३ ई० | संख्या ११

पूर्ण संख्या ११६४

सूर्य-स्तुति

दीन-दयालु दिवाकर देवा। कर मुनि, मनुज, सुरासुर सेवा॥
हिम-तम-करि-केहरि करमाली। दहन दोष-दुख-दुरित-रुजाली॥
कोक-कोकनद-लोक-प्रकासी। तेज-प्रताप-रूप-रस-रासी॥
सारथि-पंगु, दिब्य रथ-गामी। हरि-संकर-बिधि-मूरति स्वामी॥
बेद-पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी राम-भगति बर माँगै॥

हे दीनदयालु भगवान् सूर्य! मुनि, मनुष्य, देवता और राक्षस सभी आपकी सेवा करते हैं। आप पाले और अन्धकाररूपी हाथियोंको मारनेवाले वनराज सिंह हैं; किरणोंकी माला पहने रहते हैं; दोष, दुःख, दुराचार और रोगोंको भस्म कर डालते हैं। रातके बिछुड़े हुए चकवा-चकवियोंको मिलाकर प्रसन्न करनेवाले, कमलको खिलानेवाले तथा समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेवाले हैं। तेज, प्रताप, रूप और रसकी आप खानि हैं। आप दिव्य रथपर चलते हैं, आपका सारथी (अरुण) लूला है। हे स्वामी! आप विष्णु, शिव और ब्रह्माके ही रूप हैं। वेद-पुराणोंमें आपकी कीर्ति जगमगा रही है। तुलसीदास आपसे श्रीराम-भक्तिका वर माँगता है। **[विनय-पत्रिका]**

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, नवम्बर २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक ११

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- सूर्य-स्तुति	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- ब्रह्माजीका गायोंको वरदान **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५- राजा हरिश्चन्द्रकी धर्मनिष्ठा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- माता-पिताकी सेवाकी महिमा	९
७- जीव कब जाग्रत् होता है (सन्तप्रवर श्रद्धेय श्रीपथिकजी महाराज)	१०
८- 'सबसे ऊँचा धर्म है गोसेवाका काम' **[कविता]** (श्रीराजेन्द्रजी जैन)	११
९- सत्पुरुष कौन? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
१०- दृष्टिका भेद	१३
११- प्रार्थनाका स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१४
१२- बिना अपराधके दण्ड देनेका फल	१५
१३- भगवान् प्रेमके भूखे हैं **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६
१४- पारस्परिक द्वेषका परिणाम	१७
१५- श्रीमद्भागवतकी 'समुद्रमन्थन'-कथाका तात्त्विक-विमर्श (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	१८
१६- नाम-साधनाके सूत्र (मानस केसरी पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र 'रामायणी')	२१
१७- शिव-स्तुति **[कविता]** (श्रीशिवजी मृदुल)	२३
१८- भक्तिके चरम भावोंसे ब्रह्मकी प्राप्ति (श्रीहनुमानप्रसादजी अग्रवाल)	२४
१९- मानसमें हरिनाम (वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा)	२५
२०- सेवा (श्रीरूपचन्दजी शर्मा)	२७
२१- इन्द्रियोंको वशमें कैसे करें?	२८
२२- वृद्धजनोंहेतु सुखसे जीनेकी कला (श्रीमनराखन लालजी शर्मा)	२९
२३- रामनामके गायक—गोस्वामी तुलसीदास (प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत)	३०
२४- गण्डूष-क्रिया एवं कवल-क्रिया **[आरोग्य चर्चा]** (योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द')	३३
२५- आदिशक्ति माँ महामाया देवीकी नगरी रतनपुर **[तीर्थ-दर्शन]** (डॉ० श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा)	३४
२६- महाभागवत ज्योतिपंत **[सन्त-चरित]**	३७
२७- वेशका सम्मान	३९
२८- गोमय कला और लोक मान्यताएँ (डॉ० श्रीमती प्रेषिकाजी द्विवेदी)	४०
२९- श्राद्धसारसर्वस्व सप्तार्चिस्तोत्र अथवा पितृ-स्तुति	४२
३०- व्रतोत्सव-पर्व **[पौषमासके व्रत-पर्व]**	४४
३१- सुभाषित-त्रिवेणी	४५
३२- कृपानुभूति	४६
३३- पढ़ो, समझो और करो	४७
३४- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- ब्रह्माजीका गायोंको वरदान	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- सूर्य-स्तुति	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- आदिशक्ति महामायादेवी, रतनपुर	(इकरंगा)	३४
४- महात्मा रुचिको पितरोंका दर्शन एवं वरदान	(,,)	४२

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

'वासुदेवः सर्वम्'-**की अनुभूति मानव-जीवनकी श्रेष्ठतम उपलब्धि है—ऐसा सभी सद्ग्रन्थों और संतजनका मत है। किंतु यदि हम थोड़ा-सा समय निकालकर कभी अपने एक दिनके क्रिया-कलापका ईमानदारीसे विश्लेषण करें, तो पायेंगे कि हमारी वाणी और विचारोंमें नकारात्मकता (Negativity)-का ही बोलबाला रहता है। आस-पासके वातावरणसे लेकर सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंमें हमारी निगाह उसी वस्तुपर जाती है, जो 'नहीं' है, जिसकी कमी है। जो कुछ 'है', उसपर निगाह और ध्यान जाता ही नहीं।**

आस्तिक वह है, जिसका ध्यान 'अस्ति' **अर्थात् उसपर है, जो उपस्थित है। नकारात्मक अभ्यास (**'नास्ति'-**जो नहीं है—उसपर ध्यान देना) हमें जीवनके रससे दूर करता चला जाता है। यह भी एक प्रकारकी नास्तिकता है।** 'वासुदेवः सर्वम्' **तक पहुँचनेके लिये हमें प्राप्त प्राणि-पदार्थोंमें सकारात्मक वृत्ति रखनी आवश्यक है।**

—सम्पादक

हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—भगवान्‌के शक्तिसमन्वित स्वरूपको ही युगलस्वरूप कहा जाता है। यह शक्ति नित्य शक्तिमान्‌के साथ है और शक्ति है—इसीसे वह शक्तिमान् है और इसीलिये वह नित्य युगलस्वरूप है। पर यह युगलस्वरूप वैसा नहीं है, जैसे दो परस्पर-निरपेक्ष सम्पूर्ण स्वतन्त्र व्यक्ति या पदार्थ किसी एक स्थानपर स्थित हों। ये वस्तुतः एक होकर ही लीला-चमत्कारके लिये पृथक्-पृथक् अभिव्यक्त होते हैं। इनमेंसे एकका त्याग कर देनेपर दूसरेके अस्तित्वका परिचय नहीं मिलता।

याद रखो—वस्तु और उसकी शक्ति, तत्त्व और उसका प्रकाश, विशेष्य और उसके विशेषण—समूह, पद और उसका अर्थ, सूर्य और उसका प्रकाश, अग्नि और उसका दाहकत्व—इनमें जैसे नित्य युगलभाव वर्तमान है, वैसे ही ब्रह्ममें युगलभाव है। वे नित्य दो होकर (व्यावहारिक सत्ताकी दृष्टिसे नहीं वस्तुतः) भी नित्य एक हैं और नित्य एक होकर भी नित्य दो हैं; वे नित्य भिन्न होकर भी नित्य अभिन्न हैं और नित्य अभिन्न होकर भी नित्य भिन्न हैं। वे एकमें ही सदा दो हैं और दोमें ही सदा एक हैं।

याद रखो—परम तत्त्वस्वरूप ब्रह्म 'सर्वातीत' भी है और 'सर्वकारणात्मक' भी है। सर्वकारणात्मक स्वरूपके द्वारा ही सर्वातीतका सन्धान प्राप्त होता है और सर्वातीत स्वरूप ही सर्वकारणात्मक स्वरूपका आश्रय है। वस्तुतः ब्रह्मकी अद्वैत पूर्ण सत्ता इन दोनों स्वरूपोंको लेकर ही है। यह चरम तथा परम तत्त्व एक, अद्वितीय, देश-काल-अवस्था-परिणामसे सर्वथा अतीत, पूर्णतया अनवच्छिन्न सच्चिदानन्दस्वरूप है और वही समस्त देशों, समस्त कालों, सारी अवस्थाओं और सम्पूर्ण परिणामोंके द्वारा अपने स्वतन्त्र सच्चिदानन्द-स्वरूपकी—अपनी नित्य, सत्य, चेतना और आनन्दकी मनोहर झाँकी करा रहा है। जहाँ किसी भी दृश्य, ग्राह्य, कथन करनेयोग्य, चिन्तन करनेयोग्य और धारणामें लानेयोग्य पदार्थके साथ उसका कोई भी सम्बन्ध या सादृश्य नहीं है, वहीं उसी कालमें, वही कालातीत, अवस्था-परिणामशून्य, इन्द्रिय मन-बुद्धिके अगोचर शान्त अनन्त एकमात्र सत्तास्वरूप अक्षर परमात्मा ही सर्वकालोंमें, समस्त देशोंमें तथा सम्पूर्ण वस्तुओं तथा स्थितियोंमें नित्य विराजित है।

याद रखो—वह परम तत्त्वस्वरूप सर्वातीत परमात्मा ही सर्वकारण-कारण, सर्वगत, सबमें नित्य अनुस्यूत और सबका अन्तर्यामी है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म, नित्य अभेद, परिणामशून्य अद्वय परम तत्त्व ही चराचर भूतमात्रकी योनि है, एवं अनन्त विचित्र पदार्थोंका वही एकमात्र अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। वही विश्वातीत है, वही विश्वकृत् है, वही विश्ववित् है और वही विश्व भी है।

याद रखो—वह परम तत्त्व भगवान् एक ही अनेक बना हुआ है। वस्तुतः न तो वह एक अवस्थासे किसी दूसरी अवस्थामें जाता है, न जाना चाहता है और न उसकी सहज नित्यस्वरूप स्थितिमें कभी कोई परिवर्तन ही होता है। स्थिति और गति, अव्यक्त और व्यक्त, निवृत्ति और प्रवृत्ति, विरति और भोग, साधन और सिद्धि, कामना और फल, भूत और भविष्य, दूर और समीप, एक और बहुत—ये सभी भेद उस परमात्मामें नित्य अभेदरूपसे लीलायमान हैं; क्योंकि वह पूर्ण सच्चिदानन्द सत्ता सर्वथा विशुद्ध अभेद-भूमि है। उस अभेद-भूमिमें नित्य सत्य चैतन्यघन परमात्मा परस्परविरोधी धर्मोंको सदा-सर्वदा आलिंगन किये रहता है।

याद रखो—अकेलेमें रमणका अभाव होनेके कारण वे नित्य रमणशील भगवान् नित्य (मिथुन) युगल हैं। काल-परम्पराके क्रमसे किसी अवस्था-भेदको प्राप्त होना उनके लिये सम्भव नहीं है। इसीलिये ये नित्य मिथुन हैं और इस नित्य युगलत्वमें ही उनका पूर्ण एकत्व है। उनका अपने स्वरूपमें ही नित्य आत्मरमण—अपनी अनन्त सत्ता, अनन्त ज्ञान, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त सौन्दर्य और अनन्त माधुर्यका अनवरत आस्वादन अबाध चल रहा है। वे ही रस हैं—आस्वाद्य हैं और वे ही रसिक—आस्वादक हैं। वे ही लक्ष्मी हैं, वे ही नारायण हैं; वे ही उमा हैं, वे ही महेश्वर हैं; वे ही सीता हैं, वे ही राम हैं; वे ही राधा हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं; वे ही शक्ति हैं, वे ही शक्तिमान् हैं; वे ही विषय हैं, वे ही आश्रय हैं। यह उनका नित्य रसमय युगलस्वरूप तथा उनका दिव्य लीला-विहार नित्य, सत्य और सनातन है। '**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

ब्रह्माजीका गायोंको वरदान

भगवान् ब्रह्माजी लोकपितामह हैं, अखिल सृष्टिके स्रष्टा हैं। सम्पूर्ण चराचर सृष्टिका सृजन करनेके कारण उन्हें पितासे भी ऊपर 'पितामह'की उपाधि प्राप्त है।

ब्रह्माजीके ही एक पुत्र थे प्रजापति दक्ष, जिन्हें बादमें भगवान् शंकरके श्वशुर होनेका गौरव प्राप्त हुआ। उन प्रजापति दक्षको ब्रह्माजीने आदेश दिया कि 'प्रजाओंकी सृष्टि करो', परंतु प्रजापति दक्षने सोचा कि प्रजाओंकी उत्पत्तिसे पहले उनकी आजीविकाका प्रबन्ध करना आवश्यक है। अत: मन-ही-मन ऐसा विचारकर उन भगवान् प्रजापतिने प्रजावर्गकी आजीविकाके लिये अमृतका पान किया। उस अमृतपानसे पूर्ण तृप्त होनेपर उनके मुखसे सुरभित (मनोहर) गन्ध निकलने लगी। उस गन्धके साथ ही उनके मुखसे एक गौ प्रकट हो गयी। सुरभित गन्धसे प्रकट होनेके कारण उस गौका 'सुरभि'—यह नाम पड़ा। चूँकि सुरभिकी उत्पत्ति प्रजापति दक्षके मुखसे हुई थी, इसलिये उसे दक्षकी पुत्री माना गया। इस प्रकार पितामह ब्रह्माके पुत्र हुए प्रजापति दक्ष और दक्षकी पुत्री हुई गोमाता सुरभि। अत: ब्रह्माजी सुरभिके पितामह हुए। उन देवी सुरभिने स्वर्णके समान वर्णवाली 'सौरभेयी' नामवाली बहुत-सी गायोंको जन्म दिया।

पहले गौएँ बिना सींगकी थीं, जिससे उनकी शोभा अधूरी थी। अत: उन्होंने ब्रह्माजीकी उपासना करते हुए प्रायोपवेशन (आमरण अनशन) प्रारम्भ कर दिया। गौओंके इस कष्टको देखकर पितामह ब्रह्मा दयार्द्र हो उठे और उन्होंने उन्हें इच्छित वरदान दिया। इस प्रकार सींगें प्राप्त हो जानेसे गायोंकी बड़ी शोभा होने लगी।

प्राचीनकालमें गौओंने श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये एक लाख वर्षोंतक कठोर तपस्या की थी, तब ब्रह्माजीने गौओंको ऋषियों-मुनियों और देवताओंसे भी श्रेष्ठ मानते हुए सब लोकोंसे ऊपर गोलोकमें स्थान दिया। ब्रह्माजीके वरदानसे जगत्में दक्षिणा देनेयोग्य जितनी भी वस्तुएँ है, उन सबमें गौएँ सर्वोत्तम मानी जाती हैं। मनुष्य ही नहीं देवता भी पवित्रताकी प्राप्तिके लिये गौओंके गोमयका उपयोगकर पवित्र होते हैं।

लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी गोभक्तिके आदि उपदेशक हैं।

देवराज इन्द्रके पूछनेपर पितामह ब्रह्माजीने गायोंको सर्वोच्च लोक गोलोक दिये जानेका कारण बताते हुए कहा कि गायोंने लोभ और कामनाका त्यागकर निष्कामभावसे तप किया था, इसीलिये उन्हें तीनों लोकोंसे ऊपर गोलोकमें निवास मिला। इसकी कथा इस प्रकार है—

सत्ययुगकी बात है, महामनस्वी देवेश्वरगण तीनों लोकोंपर राज्य करते थे। परंतु कालक्रमसे देवताओंके हाथसे शासनसूत्र दैत्यराज महात्मा बलिके हाथोंमें चला गया। उस समय देवमाता अदितिने भगवान् विष्णुको उद्देश्य कर एक पैरपर खड़ी होकर घोर तपस्या की। देवी अदितिकी इच्छा थी कि मुझे एक ऐसा पुत्र प्राप्त हो, जो पुन: दैत्योंसे देवताओंको राज्य दिला सके। उस समय देवी अदितिको तपस्या करते देखकर गोमाता सुरभिने भी उन्हींके साथ एक पैरपर खड़े होकर घोर तप करना शुरू किया। उनका यह तप ग्यारह हजार वर्षोंतक चलता रहा, इससे देव, ऋषि, नाग—सभी संतप्त हो उठे। उन सबने ब्रह्माजीके पास जाकर अपने कष्टका निवेदन किया और देवी सुरभिको वरदान देकर उन्हें उग्र तपसे विरत करनेकी प्रार्थना की। उन सबकी प्रार्थनापर ब्रह्माजी सुरभिके पास गये और बोले—हे देवि! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ, तुम इच्छानुसार वर माँगो।' इसपर सुरभिने कहा—हे भगवन्! मुझे वर लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मेरे लिये यही सबसे बड़ा वर है कि आप मुझपर प्रसन्न हैं।

सुरभिकी इस निष्काम तपस्यासे ब्रह्माजीने उसे तीनों लोकोंके ऊपर गोलोकमें स्थान दिया।

राजा हरिश्चन्द्रकी धर्मनिष्ठा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

महाराज हरिश्चन्द्र बड़े धर्मात्मा थे। उनके राज्यकालमें कभी अकाल नहीं पड़ा, किसीको रोग नहीं हुआ, कोई भी अकालमृत्युसे नहीं मरा और पुरवासियोंकी कभी अधर्ममें रुचि नहीं हुई। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—'**यथा राजा तथा प्रजा।**' बातों-ही-बातोंमें राजाने महर्षि विश्वामित्रको अपनी स्त्री, पुत्र, धर्म और शरीरको छोड़कर बाकी सब कुछ दे दिया। और जिस समय उन्होंने यह महान् दान दिया, उस समय उनके मुखपर विषाद अथवा चिन्ताका कोई चिह्न न था। धन्य उदारता! यही नहीं, ऋषिकी आज्ञासे उन्होंने राजोचित वेषका भी परित्याग कर दिया और वे वल्कल-वस्त्र धारणकर अपनी पत्नी और कुमारके साथ राजधानीसे चल दिये। ऋषिने इसपर भी उनका पिण्ड नहीं छोड़ा। उन्होंने राजासे राजसूय-यज्ञकी दक्षिणा माँगी और राजाने एक महीने बाद उसे देनेका वचन दिया। राजाको इस प्रकार अपनी रानी और सुकुमार बच्चेके साथ पैदल जाते देख उनकी समस्त प्रजा व्याकुल हो उठी। उनके आश्वासनके लिये राजा थोड़ी देर रुक गये। इसपर विश्वामित्रको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने राजाको बहुत कुछ बुरा-भला कहा। परंतु धर्मभीरु राजा धैर्यपूर्वक सब कुछ सहते रहे, उन्होंने चूँ तक नहीं की।

राजा घूमते-घूमते काशी पहुँचे। उन्होंने सोचा—'काशी भगवान् विश्वनाथकी पुरी है, इसपर किसी मनुष्यका अधिकार नहीं हो सकता। इस प्रकार यह नगरी अवश्य मेरे राज्यकी सीमासे बाहर है, अत: यहाँ रहनेमें मेरे लिये कोई आपत्तिकी बात नहीं हो सकती।' यह सोचकर ज्यों ही उन्होंने नगरमें प्रवेश किया, त्यों ही उन्हें विश्वामित्र दिखायी दिये। दक्षिणाके लिये उनका बेहद तकाजा देखकर राजाने निरुपाय हो अपनेको बेचनेका निश्चय किया। किंतु रानीका बहुत अधिक आग्रह देख पहले उन्होंने रानीको ही एक ब्राह्मणके हाथ बेच दिया। परंतु बालक रोहिताश्व किसी प्रकार भी अपनी माताको छोड़ नहीं रहा था, इसपर रानीने बिलखकर ब्राह्मणसे उस बालकको भी खरीद लेनेके लिये प्रार्थना की और वे दोनों उसके साथ हो लिये। राजाने छातीपर वज्र रखकर उस ब्राह्मणसे अपनी प्यारी पत्नी और प्राणोपम पुत्रका मूल्य ग्रहण किया और उसे ऋषिके हवाले किया। किंतु ऋषिको उतने द्रव्यसे सन्तोष क्यों होने लगा। वे तो हरिश्चन्द्रको कष्टोंकी आगमें तपाकर खरा सोना बनाना चाहते थे। आखिर राजाने स्वयं भी चाण्डाल बने हुए धर्मकी दासता स्वीकार की और इस प्रकार विश्वामित्रके ऋणसे मुक्ति पायी। चाण्डाल उन्हें बाँधकर डण्डोंकी मारसे अचेत-सा करता हुआ अपने घर ले गया और श्मशानभूमिपर मुर्दोंके कफन बटोरनेके काममें नियुक्त किया। एक दिन रोहिताश्वको साँप काट गया, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। रानी उस मृत बालकको गोदमें लेकर उसी श्मशानपर आयी और रोने लगी। दोनों एक-दूसरेको पहचान न सके। रोते-रोते अनायास रानीके मुँहसे अपने पतिका नाम निकल पड़ा। अब तो राजाने उसको तथा अपने पुत्रको भी पहचान लिया और वे भी जोर-जोरसे रोने लगे। उन्हें इस प्रकार अपने पुत्रका नाम लेकर रोते देख रानी भी राजाको पहचान गयी और घोर विलाप करने लगी। अन्तमें राजाने अत्यन्त दुखी होकर अपने पुत्रकी चिताग्निमें प्रवेश करनेका निश्चय किया और रानी भी उनके साथ जलनेको प्रस्तुत हो गयी। इतनेमें ही इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता धर्मको अगुआ बनाकर वहाँ उपस्थित हुए और राजाको अग्निमें प्रवेश करनेसे रोक दिया। इसके बाद देवराज इन्द्रने चिताके ऊपर आकाशसे अमृतकी वर्षा की, जिससे रोहित तुरन्त जी उठा और राजाने उसे अपनी छातीसे लगा लिया।

देवताओंने जब राजासे दिव्य लोकोंमें चलनेके लिये प्रार्थना की, उस समय भी राजा धर्मको नहीं भूले।

उन्होंने विनयपूर्वक कहा—'देवराज! मैं तो चाण्डालका क्रीत दास हूँ, स्वतन्त्र तो हूँ नहीं। फिर उनसे बिना आज्ञा लिये तथा उनके ऋणसे उऋण हुए बिना मैं कैसे जा सकता हूँ?' उन्होंने यह भी कहा कि अयोध्यावासी सब-के-सब मेरे विरहमें सन्तप्त हैं, उन्हें छोड़कर मैं दिव्यलोकोंमें कैसे जा सकता हूँ? 'हाँ, यदि वे लोग भी मेरे साथ चल सकें तब तो मैं भी चल सकता हूँ, अन्यथा नहीं। देवेश! यदि मैंने कुछ भी पुण्य किया हो तो उसका फल मुझे उन सबके साथ ही मिले, उसमें उनका समान अधिकार हो।' धन्य प्रजावत्सलता! बस, फिर क्या था! देखते-देखते देवराज इन्द्रने स्वर्गसे भूलोकतक करोड़ों विमानोंका ताँता बाँध दिया। महर्षि विश्वामित्र भी वहाँ आ गये थे। उन्होंने कुमार रोहितको अयोध्यापुरीमें ले जाकर राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया और सब लोग उन्हें पिताके स्थानपर देख बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर सारे-के-सारे अयोध्यावासी अपने पुत्र, भृत्य एवं स्त्रियोंके सहित विमानोंपर आरूढ़ हो स्वर्गको चले गये। धन्य नरेश! राजा हो तो ऐसा ही हो।

माता-पिताकी सेवाकी महिमा

महाराष्ट्रमें चन्द्रभागा नदीके तटपर स्थित श्रीविट्ठल (विठोबा)-भगवान्‌के मन्दिरके पास ही प्रायः पाँच सौ गज दूरपर 'पुण्डलीक' का मन्दिर है और वहाँ इसका बड़ा माहात्म्य है। ये पुण्डलीक पहले माता-पिताके भक्त नहीं थे। एक बार वे पत्नीसहित काशी गये थे, वहाँ उन्होंने काशीसे तीन कोसपर मातृ-पितृभक्त कुक्कुट ऋषिके आश्रममें गंगा-यमुना-सरस्वतीको ऋषिकी क्षुद्र सेवा करते देखा। पुण्डलीक जब उनके चरण-स्पर्श करनेको बढ़े, तब वे यह कहकर दूर हट गयीं कि 'तुम पापी हो, हमें छूना मत।' पुण्डलीकके बहुत अनुनय-विनय करनेपर उन्होंने बताया कि 'तुम-सरीखे पापी हममें स्नान करके जो पापराशि छोड़ जाते हैं, उस पापराशिको धोकर पूर्ववत् विशुद्ध होनेके लिये हमलोग पुण्यपुरुषोंके आश्रमोंमें आकर उनकी सेवा करती हैं।'

यह सुनकर पुण्डलीकने उनसे अपने उद्धारका उपाय पूछा। उन्होंने कुक्कुट ऋषिके पास जाकर उनसे पूछनेकी सम्मति दी। तदनुसार पुण्डलीकने कुक्कुट ऋषिके पास जाकर अपनी सारी कथा सुनायी और उद्धारका उपाय पूछा। इसपर परम मातृ-पितृभक्त कुक्कुट ऋषिने कहा कि 'पुण्डलीक! तू बड़ा मूर्ख है, जो माता-पिताको छोड़कर यहाँ काशी-यात्राको आया है। तुझे यहाँ क्या फल मिलेंगे! माता-पिताकी सेवा काशी-यात्राकी अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ है। जा, माता-पिताकी सेवा कर।' यह सुनकर पुण्डलीक वहाँसे लौट आये और अनन्यभावसे माता-पिताकी सेवा करने लगे। वे फिर माता-पिताके साथ पण्ढरीमें आकर रहे। एक दिन उन्हें दर्शन देनेके लिये स्वयं भगवान् पधारे। उस समय ये माता-पिताकी सेवामें लगे थे। इन्होंने भगवान्‌के आदरातिथ्यकी अपेक्षा माता-पिताकी सेवाको श्रेष्ठ समझा और भगवान्‌की भी उपेक्षा न हो, इसलिये भगवान्‌की ओर एक ईंट फेंककर प्रार्थना की कि आप इसपर खड़े रहें। भगवान् भक्तवत्सल हैं। पुण्डलीककी मातृ-पितृभक्तिसे सन्तुष्ट होकर उसी ईंटपर खड़े हो गये। माता-पिताकी सेवा कर चुकनेपर भगवान्‌की पुण्डलीकने स्तुति की। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर जब वर माँगनेको कहा, तब पुण्डलीकने यही वर माँगा कि 'मेरी मातृ-पितृभक्ति सदा बनी रहे और आप इसी रूपमें यहीं विराजें।' पुण्डलीकको 'तथास्तु' कहकर भगवान् पुण्डलीकके इच्छानुसार श्रीविग्रहके रूपमें ईंटपर ही खड़े हो गये और आजतक उन्हीं श्रीविग्रहकी पूजा होती है। और लाखों नर-नारी 'पुण्डलीक वरदे हरि विट्ठल' का जय-घोष करते हुए भगवान्‌के दर्शन करते हैं। पुण्डलीककी पूजा होती है और पुण्डलीकके माता-पिताकी समाधि भी उन्हींके मन्दिरके पास ही विद्यमान है।

इससे यह बात सिद्ध होती है कि केवल माता-पिताकी सेवासे भी मनुष्यका कल्याण हो सकता है।

जीव कब जाग्रत् होता है

(सन्तप्रवर श्रद्धेय श्रीपथिकजी महाराज)

अज्ञानान्धकारमें मोहनिद्राके वशीभूत मानव तभी जागते हैं, जब कालान्तरमें ज्ञानालोकद्वारा अपनी बुद्धिसे सुखकी पूर्तिका अनुभव करते हैं। इसके पहले सुख-स्वप्नाभिभूत मानव तब जागते हैं, जब अचानक ही कोई असह्य दु:खाघात होता है। इसके लिये पहले कोई-कोई भाग्यवान् सुसंस्कारी मानव सन्त सद्गुरुजनोंके हृदयस्पर्शी सत्य-ज्ञानगानको सुनकर ही जाग उठते हैं।

कोई ऐसे भी पाशव प्रकृति-प्रधान मानव हैं कि सुखद इच्छाओंकी पूर्ति होते रहनेपर भी नहीं जाग्रत् होते, अनेकों प्रकारके दु:खाघातोंके होते रहनेपर भी नहीं जाग्रत् होते। ऐसे मनुष्योंको उस समयतक मोहनींदमें सुख-दु:खके स्वप्न देखते हुए समय बिताना पड़ता है, जबतक भयानक दु:खका कठोराघात न हो; क्योंकि पूर्ण दु:खाघातसे ही मानव विचार-प्रकाशमें जाग्रत् होता है। विचार-प्रकाशमें ही जीवकी ऐसी दृष्टि खुलती है कि जिसमें असत्संगका दुष्परिणाम दिखायी देता है, तभी सत्संगकी जिज्ञासा उदय होती है; क्योंकि सत्संगसे ही सद्गुणोंका विकास होता है।

वास्तवमें विशेष रूपसे जागृति तो सन्त-सद्गुरुके सुयोगसे ही होती है; यदि यह सुयोग सुलभ न हो, तो करोड़ों वर्ष जीव अज्ञानान्धकारमें जीवन व्यतीत करता रहता है, लेकिन न तो सत्यासत्यका ज्ञान ही होता है और न आत्माके दिव्य गुणोंका विकास ही होता है।

वास्तवमें विशेषरूपसे जागृति तो सन्त-सद्गुरुके सुयोगसे ही होती है, यदि यह सुयोग सुलभ न हो, तो करोड़ों वर्ष जीव अज्ञानान्धकारमें जीवन व्यतीत करता रहता है, लेकिन न तो सत्यासत्यका ज्ञान ही होता है और न आत्माके दिव्य गुणोंका विकास ही होता है।

जाग्रत् पुरुषका लक्षण—*'जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥'* वास्तवमें वही जाग्रत् पुरुष हैं, जो संसारके नश्वर सुख-भोगसे विरक्त हो रहे हैं। वही जाग्रत् पुरुष हैं, जिनके मनसे शोक-मोह नष्ट हो गये हैं, जिनका अन्त:करण पवित्र हो गया है, जहाँ संसारके किसी पदार्थके प्रति राग नहीं रह गया है। वह भी जाग्रत् मनुष्य हैं, जो बाल्यकाल अथवा युवावस्थाके प्रारम्भसे ही सत्कर्म, सद्भाव, सद्ज्ञानद्वारा अपने परम लक्ष्यकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। ऐसे जाग्रत् पुरुष स्वल्पायुमें ही वृद्ध हैं, बल्कि वे वृद्ध नहीं हैं, जो कि सौ वर्ष जीते हुए भी सत्यज्ञानसे विमुख रहकर मोहनिद्रामें ही जीवनको निरर्थक खो रहे हैं। जो सद्ज्ञानसे पूर्ण हैं, वही जाग्रत् पुरुष हैं।

वह भी जाग्रत् पुरुष हैं, जो यम, नियम, संयमादिके द्वारा प्रारम्भिक जीवनसे ही सावधान होकर इन्द्रियों समेत मनको वशमें करके इन सबके सच्चे स्वामी हो रहे हैं, जो परमार्थ-सिद्धिके लिये सन्त-सद्गुरुकी शरणमें रहकर निरन्तर उनके ही निर्देशानुसार जीवन-यात्रा कर रहे हैं। ऐसे श्रद्धालु पुरुषोंको नि:सन्देह सत्यका बोध होगा और वह अपने परम लक्ष्यको प्राप्त करेंगे।

जो जाग्रत् पुरुष हैं, उन्हींको दिखायी पड़ता है कि इस संसारमें जीवनका समय बहुत ही कम है और कार्य बहुत बड़ा करना है, शक्ति अति स्वल्प और सीमित है, परंतु यात्रा बहुत लम्बी पूरी करनी है। उन्हें यह भी दिखायी देता है कि प्रत्येक दु:ख अपने ही दोषोंके कारण आता है, प्रत्येक बन्धन अपने ही बनाये हुए हैं और उन बन्धनोंसे मुक्त होना अपने ही अधिकारमें है।

जो जाग्रत् पुरुष हैं, उन्हींको यह ज्ञान होता है कि जो शुभ कार्य अपने ही अज्ञानके कारण, अपने ही आलस्य-प्रमादके कारण सैकड़ों जन्मोंसे पूरा नहीं हो सका, वह परम शान्ति एवं मुक्तिका महान् कार्य अपने सद्ज्ञानके बलसे, अपने ही प्रयत्नसे एवं शक्ति और समयके सदुपयोगसे कुछ ही वर्षोंके भीतर पूर्ण हो सकता है।

जो जाग्रत् पुरुष हैं, उन्हींकी समझमें यह आता है कि संसारका सुख मिथ्या है, माना हुआ है और अस्थिर है, वही यह सोचते हैं कि इस थोड़ेसे जीवनके समयमें, यदि किसी प्रकार न्यूनाधिक रूपसे यशकी प्राप्ति हो

गयी या मानव-समाजकी ओरसे कुछ विशेष सम्मान या उच्च पदाधिकार मिल गया, अथवा यहाँपर अधिकाधिक ऐश्वर्य, भोग-सुख, वैभव ही प्राप्त हो गये, तो कबतक यह जीवनका साथ देंगे? क्योंकि जगत्में तो कुछ भी एकरस और स्थिर नहीं है, तब इन सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिके अगणित सम्बन्ध बढ़ाना, अहंता, ममतासे आबद्ध होना मूर्खता ही है। यह विचार करके ही जाग्रत् पुरुष त्यागका पक्ष लेते हैं।

जाग्रत् पुरुषके ही उद्‌गार हैं कि

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद॥

जाग्रत् पुरुष ही देख पाते हैं कि संसारमें अज्ञानके कारण सुखकी लिप्सावश किस प्रकार अनेकों तरहके दुःख भोगते रहते हैं। यह सभी मोहसे मोहित हुए मानव, अधिक-से-अधिक दिन जीनेकी तो इच्छा करते हैं, परंतु जीवनको सुन्दर बनानेकी विधि नहीं जानते। ऐसी मूढ़ बुद्धिवाले मनुष्य संसारमें विविध पदार्थोंके तथा देहके सुखों और सांसारिक सम्बन्धियोंके बाह्य रूपको ही देखकर मुग्ध होते हैं, लेकिन उनके अन्तरकी वास्तविकताको नहीं जानते।

जाग्रत् पुरुष किसी भी वस्तुके बाह्यरूपको देखनेके साथ ही, उसके अन्तरंग तथ्यको भी जान लेते हैं। जाग्रत् पुरुष अपनेको देखते हैं, अपने आगे-पीछेकी वस्तुओंको देखते हैं, अपने गन्तव्य लक्ष्यको देखते हैं और लक्ष्यप्राप्तिके पथको भी देखते हैं। इस प्रकार यथार्थ देखनेके कारण ही वह सावधान होकर यात्रा करते हैं और सन्मार्गसे चलते हुए लक्ष्यको प्राप्त करते हैं।

'सबसे ऊँचा धर्म है गोसेवा का काम'

सबसे ऊँचा धर्म है गोसेवा का काम।
जीते जी धन-यश मिले मरने पे प्रभु-धाम॥
गाय श्रेष्ठ प्राणी बहुत इस सम और न कोई।
करे जो गोसेवा सदा प्रिय प्रभु का होई॥
खाके तृण दे दूध जो उस सम कौन उदार?
उस गोमाता को करूँ नमन मैं बारम्बार॥
दूध घी मक्खन तथा छाछ ये हमको देत।
बदले में बस तृण सदा गो माता ही लेत॥
दे करके जो दूध घृत करे परम उपकार।
उपकारी गोमात को वंदन शत शत बार॥
गोबर व गोमूत्र भी आते कितने काम।
ईंधन व आरोग्य की गोमाता है धाम॥
मरकर भी करती सदा हमपे ये उपकार।
अस्थि चर्म व सींग से वस्तु बने अपार॥
तैंतीस कोटि देवता करे गाय में वास।
हो जाता संपन्न वो जो रखे गाय को पास॥
जन्म से लेके मृत्यु तक करे सतत उपकार।
ऐसी गो माता भरे, अन्न-धन का भंडार॥
लेती कम, देती बहुत अति उदार गो मात।
है अनुपम आला बहुत, हर इक इसकी बात॥
बछिया बनती गाय जब दूध पौष्टिक देत।
बछड़ा बनता बैल जब जोते अपने खेत॥
गो जैसा प्राणी नहीं, निरीह और निष्पाप।
गोहत्या सम है नहीं, जग में कोई पाप॥
गोसेवा जो भी करे, रहे सदा खुशहाल।
दूध घृत का पान कर होता बहुत निहाल॥
गोमूत्र करता कई, रोगों का उपचार।
स्वस्थ रहे तन सर्वदा जीवन हो निर्भार॥
गोसेवा मन से करे, होत त्रिविध कल्याण।
ज्ञान कर्म भक्ति फले प्रभु-सेवा सम जान॥
पावन हो परिवेश व रोग शोक भग जाय।
त्रिविध ताप का नाश हो जब गौ घर में आय॥
पेस्टीसाइड ने किया खेती को बरबाद।
शुद्ध अन्न चाहो यदि डालो गोबर खाद॥
सभी धनों में श्रेष्ठतम गोधन को ही जान।
लक्ष्मी का भंडार बस गोमाता को मान॥
सभी राष्ट्र समृद्ध हैं, जहाँ विपुल गो मात।
सभी जगह संपन्नता, अन्न-धन नहीं समात॥
डेनमार्क, स्वीडेन या होवे न्यूजीलैण्ड।
गो-कृपा से ही सुखी देखो नीदरलैण्ड॥
होवे घर घर गाय तो सुखी सभी हो जाये।
दूर गरीबी हो सकल, चहुँदिश आनंद छाये॥
जबतक घर घर गाय थी भारत था खुशहाल।
दूध तथा घी से बहुत देश था मालामाल॥
कपिला, श्यामा, नंदिनी, कामधेनु शुभ नाम।
सर्व देव की वासिनी, गोमाता सुखधाम॥
गोमाता चरणन रहे, रिद्धि सिद्धि का वास।
जो सेवा उर से करे, हो विघ्नों का नाश॥
धन्य बहुत वे जीव जो पाये गो आशीष।
सेवा हरदम ही करे नत कर अपना शीश॥
मात पिता सम ही करें, गो माँ का सम्मान।
गायों का सम्मान ही भारत की पहचान॥
गोसेवा में रत रहे, हरदम ही गोपाल।
माखन खा नंदलाल ने मारा कंस कराल॥
गायों का रक्षण करे, दे करके निज प्राण।
यही हमारा धर्म है, कहते वेद पुराण॥
रहा नहीं गोवंश तो, होंगे हम बदहाल।
दूध, घृत व छाछ का, होगा शीघ्र अकाल॥
गोशाला में दान दे करे पुण्य का काम।
मरके जाता जीव वो सचमुच प्रभु के धाम॥
गोवध पर प्रतिबंध हो, लगे शीघ्र ही रोक।
करें माँग पुरजोर सब, शक्ति सकल निज झोंक॥

[श्रीराजेन्द्रजी जैन]

सत्पुरुष कौन ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'सत्' उसे कहते हैं जो सदा है, जिसका कभी अभाव नहीं होता, जो नित्य सत्य चिदानन्दस्वरूप है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—चारों अवस्थाओंमें सम एवं एकरूप है; जो सबका आश्रय, ज्ञाता, प्रकाशक और आधार है; श्रुतियाँ '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' आदि कहकर जिसका संकेत करती हैं और जो एकमात्र चैतन्यघन होनेपर भी अनेक रूपोंमें दिखायी पड़ता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(२।१६)

जो 'असत्' है, उसका कभी अस्तित्व नहीं है और जो 'सत्' है, उसका कभी अभाव नहीं है। अर्थात् वह सदा सर्वत्र है। सब कुछ उसीमें है, वही सबमें समाया है। यह 'सत्' ही परमात्मा—परात्पर ब्रह्म है। यथार्थमें इस 'सत्' की उपलब्धि ही मानव-जीवनका प्रधान ही नहीं, एकमात्र लक्ष्य है। इसीके लिये भगवान् दया करके जीवको मनुष्य-योनिमें भेजते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही । देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

जो मनुष्य नरदेहका यह वास्तविक लाभ न उठाकर पशु या पिशाचवत् भोगोंके उपार्जन और उनके भोगमें ही लगा रहता है, उसका मानव-जन्म व्यर्थ हो जाता है। केवल व्यर्थ ही नहीं जाता, भोगकामनासे मनुष्यका विवेक ढक जाता है और वह भोगोंकी प्राप्तिके लिये अनेकों पापकर्मोंमें प्रवृत्त होकर मानव-जीवनको असुर-जीवनमें परिणत कर डालता है, जिसका बहुत बुरा परिणाम होता है। भगवान्‌ने कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६।२०)

'कौन्तेय! वे मूढ़लोग मुझको (भगवान्‌को) तो प्राप्त होते ही नहीं, जन्म-जन्ममें आसुरी योनिमें जाते हैं और फिर उससे भी अति नीच गति (घोर नरकों)-को प्राप्त होते हैं।'

इसलिये मनुष्यका यही एकमात्र कर्तव्य या परम धर्म होता है कि वह लोक-परलोकके कल्याण तथा मानव-जीवनके परम साध्य परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही सब कार्य करके अपने जीवनको सफल करे। विषयभोगोंको इस जीवनका लक्ष्य समझकर उन्हींको प्राप्त करनेमें जीवन लगाना तो अमृत देकर बदलेमें जहर लेना है। भगवान् श्रीरामचन्द्रने कहा है—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

वे आगे चलकर कहते हैं कि इस प्रकारकी दुर्लभ सुविधा पाकर भी जो भवसागरसे नहीं तरता, वह आत्महत्यारेकी गतिको प्राप्त होता है—

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

यही बात श्रीमद्भागवतके इस श्लोकमें कही गयी है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥

(११।२०।७)

श्रुति कहती है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोपनिषद् २।५)

'यदि इस मनुष्य-शरीरमें परमात्मतत्त्वको जान लिया जायगा तो सत्य है—(सत्यकी उपलब्धिसे

मानवजीवनकी सार्थकता है) और यदि इस जन्ममें उसको नहीं जाना तो महान् हानि है। धीर पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माका चिन्तनकर—परमात्माको समझकर इस देहका त्याग करके अमृतको प्राप्त होते हैं। अर्थात् इस देहसे प्राणोंके निकल जानेपर वे अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।'

इस 'सत्'-स्वरूप चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिके जितने साधन हैं या परमात्माको प्राप्त महापुरुषमें अथवा परमात्मप्राप्तिके साधनमें लगे हुए सच्चे साधकमें जिन-जिन गुणों और क्रियाओंका प्रकाश और विकास देखा जाता है, वे सब भी 'सत्' ही हैं। इसीसे भगवान्ने गीता (१७। २६-२७)-में कहा है—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥

'सत्' इस (परमात्माके नाम)-का सद्भावमें और साधुभावमें प्रयोग किया जाता है तथा अर्जुन! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है और यज्ञ, तप तथा दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' है—ऐसा कहा जाता है। एवं उस परमात्माके लिये किया गया (प्रत्येक) कर्म ही सत् है—ऐसा कहा जाता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा या भगवान् भी 'सत्' है तथा उस सत्के साधन तथा सत्यके प्राप्त होनेपर स्वभावतः ही सत्पुरुषमें दीखनेवाले गुण भी 'सत्' हैं—अर्थात् सद्गुण, सद्भाव, सद्विचार, सदाचार, सद्व्यवहार, सत्यभाषण, सत्-आहार सद्विहार—जो कुछ भी भगवान्के प्राप्त्यर्थ, प्रीत्यर्थ या सहज दैवीगुणरूपमें विकसित भाव-विचार-गुण, कर्म आदि हैं, सभी 'सत्' हैं और ये जिसके जीवनमें प्रत्यक्ष प्रकट हैं, वे ही 'सत्पुरुष' हैं।

दृष्टिका भेद

एक चित्रकार था। उसने एक सुन्दर रंगीन चित्र तैयार किया। वह अपने चित्रको लेकर विनोबाजीके पास पहुँचा। बोला—'इस चित्रको बनानेमें ५० रुपये खर्च हुए हैं; कल्पना और मेहनत अलगसे लगी है। इस चित्रमें आपको सन्ध्याका गुलाबी रंग कैसा लगता है?'

सुनकर विनोबाजीने कुछ ऐसा मुँह बनाया, जिससे उनकी नापसन्दगी जाहिर होती थी।

चित्रकारने कहा—'मेरे गुरुजीने तो कहा है कि चित्र किसी अच्छी प्रदर्शनीमें रखनेयोग्य है। अगर बेचा जाय तो दो सौ रुपये आसानीसे मिलेंगे! आपको चित्र अच्छा नहीं लगा?'

विनोबाजी बोले—'चित्र तो मुझे बहुत अच्छे लगते हैं, लेकिन तुमने कहा कि इस चित्रपर पचास रुपये खर्च हुए हैं, तो मेरे मनमें विचार उठा कि इस गाँवके बाहर बसे उस झोपड़ेमें बुनकरका एक लड़का है। उसका गाल, ओठ और सारा शरीर एकदम फीका पड़ गया है। उसके बापकी बनायी खादी कोई खरीदता नहीं। उसके परिवारका खर्च चलता नहीं—गुजारा होता नहीं। उस लड़केको न तो दूधकी एक बूँद मिलती है, और न पूरी खुराक। अगर इन पचास रुपयोंकी खादी खरीदी जाय और उस बुनकरके हाथमें उसकी मजदूरीके पैसे दिये जायँ, तो वह अपने बच्चेको दूध पिलायेगा और उसके चेहरेपर एक जिन्दा, कुदरती सुर्खी छा जायगी। उसका चेहरा हँसने लगेगा। भगवान्की बनायी यह जीती-जागती कला जहाँ मौतकी घड़ियाँ गिन रही है; वहाँ इस कागजपर रची गयी कलामें मुझे क्या दिलचस्पी हो सकती है?'

प्रार्थनाका स्वरूप

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रार्थना की नहीं जाती, अपितु स्वत: होती है। प्रार्थना ही प्रार्थीका स्वरूप है। प्रार्थना प्रार्थीको लक्ष्यसे अभिन्न करनेमें समर्थ है। प्रार्थना वास्तविकताका आदर करनेसे स्वत: जाग्रत् होती है। मृत्युके भयसे भला कौन मानव भयभीत नहीं है? अभय होनेकी माँग मानवमात्रमें स्वभावसे विद्यमान है। मृत्युके भयसे रहित करनेमें कोई परिस्थिति हेतु नहीं है। इस कारण सभी परिस्थितियोंके आश्रय तथा प्रकाशककी ओर दृष्टि स्वत: जाती है। मानव कह बैठता है—'कोई ऐसा होता जो मुझे अभयदान देता।' अत: भयहारीमें आस्था स्वत: होती है। आस्थाकी पूर्णतामें ही श्रद्धा तथा विश्वास निहित है। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भयहारीको स्वीकारकर अभय होनेकी तीव्र माँग ही वास्तविक प्रार्थना है।

यह सभीको विदित है कि कामनापूर्ति कर्मसापेक्ष तथा निष्कामता विवेकसिद्ध है, किंतु कर्म-सामग्री कर्ताको किसी विधानसे मिली है। मिली हुई वस्तुको व्यक्तिगत मान लेना और दाताको स्वीकार न करना 'प्रमाद' है। इस प्रमादकी निवृत्ति आये हुए दु:खके प्रभावसे स्वत: होती है और फिर दुखी—'हे दु:खहारी!' पुकारने लगता है। भला, इस सत्यको कौन नहीं अपनायेगा? सुखकी दासता तथा दु:खके भयके रहते हुए सभी प्रार्थी हैं। इस दृष्टिसे मानवमात्र प्रार्थी हैं। अब विचार यह करना है कि हमारी माँगमें वास्तविकताका अनादर तो नहीं है अर्थात् विवेकविरोधी माँग तो नहीं है? दु:खके अभावसे ही सुखका प्रलोभन नाश होता है और फिर स्वत: दुखी दु:खहारीसे अभिन्न होता है। यह मंगलमय विधान है। दु:खका मूल भूल है अथवा यों कहो कि भूल मिटानेके लिये दु:खके वेषमें दु:खहारी ही आते हैं और सुखके प्रलोभनको खाकर दुखीको अपनाकर योग, बोध, प्रेमसे अभिन्न कर देते हैं।

भूलका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। निज ज्ञानका अनादर, मिली हुई स्वाधीनताका दुरुपयोग तथा दैवी गुणोंको व्यक्तिगत मान लेना ही तो भूल है। भूलजनित वेदनामें ही प्रार्थना निहित है। प्रार्थनासे मानवमात्रका सर्वतोमुखी विकास होता है। इतना ही नहीं, पुरुषार्थकी परावधि एकमात्र प्रार्थनामें ही निहित है। मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदिका सदुपयोग पुरुषार्थका सदुपयोग है। मिले हुएको अपना मानना भूल है। जिसने दिया है, वह अपना है। मानव प्रमादसे उन्हें भूल जाता है, जो सदा-सदासे अपने हैं और परिवर्तनशील उत्पत्ति-विनाशयुक्त वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदिको अपना मान लेता है। वे कितने अपने हैं कि सब कुछ देनेपर भी भास नहीं होने देते कि मैं दाता हूँ? वे कितने उदार हैं कि उनको स्वीकार बिना किये भी वास्तविक माँगको पूरा करते हैं। उन्हींके प्रकाशमें चराचर जगत् प्रार्थी है। प्रार्थी अपनी माँगसे अभिन्न हो जाता है। यह दाताकी महिमा है। स्तुति और उपासना प्रार्थनामें ही निहित हैं। प्रार्थनाकी पूर्तिमें ही स्तुति उदय होती है। प्रार्थना स्वत: सर्वसमर्थसे सम्बन्ध जोड़ देती है। यही तो उपासना है। प्रार्थना उससे सम्बन्ध जोड़ देती है, जिसे प्रार्थी नहीं जानता, अपितु जो प्रार्थीको जानता है।

सन्देहकी वेदना होनेपर जिज्ञासाके रूपमें प्रार्थना ही अभिव्यक्त होती है। ज्यों-ज्यों जिज्ञासा सबल तथा स्थायी होती जाती है, त्यों-त्यों सभी निर्बलताएँ स्वत: नष्ट होती जाती हैं। जिस कालमें जिज्ञासासे भिन्न जिज्ञासुका कोई और अस्तित्व ही नहीं रहता, उसी कालमें जिज्ञासाकी पूर्ति स्वत: हो जाती है अर्थात् जिज्ञासु तत्त्वज्ञानसे अभिन्न हो जाता है, यह प्रार्थनाकी ही महिमा है। पुरुषार्थ 'अहं'-को पोषित करता है और प्रार्थना 'अहं'-को खाकर प्रार्थीको लक्ष्यसे अभिन्न करती है। इतना ही नहीं, पुरुषार्थी पुरुषार्थके आरम्भसे पूर्व प्रार्थी होता है। कारण कि सामर्थ्यके सदुपयोगसे भिन्न पुरुषार्थ कुछ नहीं है। सामर्थ्यकी माँग भी तो प्रार्थना ही है। इस दृष्टिसे प्रार्थनासे ही जीवनका आरम्भ होता है और प्रार्थनासे ही पूर्णता प्राप्त होती है।

प्रार्थना प्रार्थीकी सभी निर्बलताओंका अन्तकर

निर्दोषतासे अभिन्न करती है। इतना ही नहीं, प्रार्थनासे प्राप्त निर्दोषता साधकको गुणोंके अभिमानसे रहित कर देती है। अत सर्वांशमें दोषोंका अन्त एकमात्र प्रार्थनासे ही साध्य है।

प्रत्येक संकल्प-पूर्तिका सुख नवीन संकल्पको जन्म देता है और अन्तमें संकल्प-अपूर्ति ही शेष रहती है। इस दृष्टिसे सुख और दु:खमें आबद्ध प्राणी शान्ति नहीं पाता। यद्यपि शान्ति, स्वाधीनता एवं रसता आदिकी माँग मानवमें बीजरूपसे विद्यमान है, उस विद्यमान माँगको विकसित करना ही प्रार्थना है। प्रार्थना शरीर-धर्म नहीं है, अपितु मानवका स्वधर्म है। प्रार्थनाका प्रभाव शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिपर होता है। इस कारण प्रत्येक मानव प्रत्येक परिस्थितिमें प्रार्थना करनेमें स्वाधीन और समर्थ है अर्थात् प्रार्थनासे भिन्न मानवका अस्तित्व नहीं है; किंतु जब मानव अपनी स्वाभाविक माँगको भूलजनित कामनाओंसे शिथिल कर देता है, तब उसे प्रार्थना करनी पड़ती है। वास्तविक माँगके लिये की हुई प्रार्थना वर्तमानमें फलवती होती है। कारण कि प्रार्थना वास्तविकतासे दूरी, भेद, भिन्नता नहीं रहने देती। प्रार्थना मौजूदकी होती है और मौजूदसे होती है। भक्तोंका भगवान्, जिज्ञासुओंका तत्त्वज्ञान, योगियोंका योग नित्य-प्राप्त है। अत: प्रार्थी बड़ी ही सुगमताके साथ मानव-जीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त कर लेता है।

जो सदैव सभीका अपना है, जिसे मानव भले ही स्वीकार करे अथवा न करे, किंतु मानवकी माँग अर्थात् प्रार्थना किसी-न-किसी रूपमें स्वत: होती है। पर यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है, जब मानव शान्त होकर अपनी ओर देखे। अपनी ओर देखनेसे अपनी वर्तमान दशाका, वास्तविक माँगका तथा अपनी भूलका स्वत: ज्ञान होता है, जिसके होते ही अपने-आप प्रार्थनाका उदय होता है, जो प्रार्थीको भूलरहितकर प्रार्थीसे अभिन्न कर देती है। प्रार्थना आस्तिकवादकी दृष्टिसे प्रीतिसे भिन्न कुछ नहीं है और अध्यात्मवादकी दृष्टिसे प्रार्थना ही प्रार्थीको असंगता प्रदान करती है। भौतिकवादकी दृष्टिसे प्रार्थना प्रार्थीको विश्व-जीवनके साथ अभिन्न करती है। इस दृष्टिसे प्रार्थना प्रेम होकर प्रेमास्पदसे, असंगता होकर निज स्वरूपसे और उदारता होकर विश्वसे अभिन्न करती है। यह निर्विवाद सत्य है।

बिना अपराधके दण्ड देनेका फल

परीक्षित्-नन्दन जनमेजय अपने भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रमें एक लम्बा यज्ञ कर रहे थे। उनके तीन भाई थे—श्रुतसेन, उग्रसेन, और भीमसेन। उस यज्ञके अवसरपर वहाँ एक कुत्ता आया। जनमेजयके भाइयोंने उसे पीटा और वह रोता-चिल्लाता अपनी माँके पास गया। रोते-चिल्लाते कुत्तेसे माँने पूछा, 'बेटा! तू क्यों रो रहा है? किसने तुझे मारा है?' उसने कहा, 'माँ! मुझे जनमेजयके भाइयोंने पीटा है।' माँ बोली, 'बेटा! तुमने उनका कुछ-न-कुछ अपराध किया होगा।' कुत्तेने कहा, 'माँ! न मैंने हविष्यकी ओर देखा और न किसी वस्तुको चाटा ही। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया।' यह सुनकर माताको बड़ा दु:ख हुआ और वह जनमेजयके यज्ञमें गयी। उसने क्रोधसे कहा—'मेरे पुत्रने हविष्यको देखातक नहीं, कुछ चाटा भी नहीं; और भी इसने कोई अपराध नहीं किया। फिर इसे पीटनेका कारण?'

जनमेजय और उनके भाइयोंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कुतियाने कहा, 'तुमने बिना अपराध मेरे पुत्रको मारा है, इसलिये तुमपर अचानक ही कोई महान् भय आयेगा।' देवताओंकी कुतिया सरमाका यह शाप सुनकर जनमेजय बड़े दुखी हुए और घबराये भी। यज्ञ समाप्त होनेपर वे हस्तिनापुर आये और कालान्तरमें एक योग्य पुरोहित ढूँढ़कर सर्प-सत्र आरम्भ किया, पर आस्तीकमुनिने आकर उस यज्ञको बन्द करवा दिया। इस प्रकार जनमेजयके मनोरथकी पूर्ति न हो सकी। इसमें सरमाका शाप भी एक कारण था। [महाभारत]

साधकोंके प्रति—

भगवान् प्रेमके भूखे हैं

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

उपनिषदोंमें आता है कि *'एकाकी न रमते।'* इसका सीधी-सादी भाषामें अर्थ होता है कि भगवान्‌का अकेलेमें मन नहीं लगा। इसलिये उन्होंने सृष्टिकी रचना की। 'मैं एक ही बहुत रूपोंसे हो जाऊँ'—ऐसे संकल्पसे भगवान्‌ने मनुष्योंका निर्माण किया। इसका तात्पर्य यह दीखता है कि मनुष्योंका निर्माण भगवान्‌ने केवल अपने लिये किया है। संसारकी रचना चाहे मनुष्यके लिये की हो, पर मनुष्यकी रचना तो केवल अपने लिये की है। इसका क्या पता? भगवान्‌ने मनुष्यको ऐसी योग्यता दी है, जिससे वह तत्त्वज्ञानको प्राप्त करके मुक्त हो सकता है, भक्त हो सकता है; संसारकी सेवा भी कर सकता है और भगवान्‌की सेवा भी कर सकता है। यह संसारकी आवश्यकताकी पूर्ति भी कर सके और भगवान्‌की भूख भी मिटा सके, भगवान्‌को भी निहाल कर सके—ऐसी सामर्थ्य भगवान्‌ने मनुष्यको दी है! और किसीको भी ऐसी योग्यता नहीं दी, देवताओंको भी नहीं दी। भगवान्‌को भूख किस बातकी है? भगवान्‌को प्रेमकी भूख है। प्रेम भगवान्‌को प्रिय लगता है। प्रेम एक ऐसी विलक्षण चीज है, जिसकी आवश्यकता सबको रहती है।

एक आसक्ति होती है और एक प्रेम होता है। किसीसे हम अपने लिये स्नेह करते हैं, वह 'आसक्ति' होती है, राग होता है। रागसे ही कामना, इच्छा, वासना होती है, जो पतन करनेवाली, नरकोंमें ले जानेवाली है। जिसमें दूसरोंको सुख देनेका भाव होता है, वह 'प्रेम' होता है। आसक्तिमें लेना होता है और प्रेममें दूसरोंको देना होता है। दूसरोंको सुख देनेकी ताकत मनुष्यमें है। भगवान्‌ने मनुष्यको इतनी ताकत दी है कि वह दुनियामात्रका हित कर सकता है और अपना कल्याण कर सकता है। इतना ही नहीं, मनुष्य भगवान्‌की आवश्यकताकी पूर्ति भी कर सकता है, भगवान्‌का माँ-बाप भी बन सकता है, भगवान्‌का गुरु भी बन सकता है, भगवान्‌का मित्र भी बन सकता है और भगवान्‌का इष्ट भी बन सकता है! अर्जुनको भगवान् कहते हैं—**'इष्टोऽसि मे दृढमिति'** (गीता १८।६४)।

जैसे लड़का अलग हो जाय तो माँ-बाप चाहते हैं कि वह हमारे पास आ जाय, ऐसे ही यह जीव भगवान्‌से अलग हो गया है, इसलिये भगवान्‌को भूख है कि यह मेरी तरफ आ जाय! इस भूखकी पूर्ति मनुष्य ही कर सकता है, दूसरा कोई नहीं! मनुष्य ही भगवान्‌से प्रेम कर सकता है! देवता तो भोगोंमें लगे हैं, नारकीय जीव बेचारे दुःख पा रहे हैं, चौरासी लाख योनियोंवाले जीवोंका पता ही नहीं कि क्या करें और क्या नहीं करें? इतना ऊँचा अधिकार प्राप्त करके भी मनुष्य दुःख पाता है तो बड़े भारी आश्चर्यकी बात है! होश ही नहीं है कि मेरेमें कितनी योग्यता है और भगवान्‌ने मेरेको कितना अधिकार दिया है! मैं कितना ऊँचा बन सकता हूँ, यहाँतक कि भगवान्‌का भी मुकुटमणि बन सकता हूँ! आप कृपा करके ध्यान दो कि कितनी विलक्षण बात है! जितने भक्त हुए हैं मनुष्योंमें ही हुए हैं और इतने ऊँचे दर्जेके हुए हैं कि भगवान् भी उनका आदर करते हैं! लोग संसारके आदरको ही बड़ा समझते हैं, पर भक्तोंका आदर भगवान् करते हैं, कितनी विलक्षण बात है! सारथि बन जायँ भगवान्! नौकर बन जायँ भगवान्! जूठन उठायें भगवान्! घरका काम-धन्धा करें भगवान्! जिस तरहसे माता अपने बच्चेका पालन करके प्रसन्न होती है, इसी तरहसे भगवान् भी अपने भक्तका काम करके प्रसन्न होते हैं।

भगवान्‌का भक्तोंके प्रति एक वात्सल्यभाव रहता है। जैसे, चारेमें गोमूत्र या गोबरकी गन्ध भी आ जाय तो गाय वह चारा नहीं चरती। परंतु अपने नवजात बछड़ेको जीभसे चाटकर साफ कर देती है। वास्तवमें वह बछड़ेको साफ करनेके लिये ही नहीं चाटती, इसमें उसे खुदको एक आनन्द आता है। उसके आनन्दकी पहचान यह है कि अगर आप बछड़ेको धोकर साफ कर दोगे तो गायका दूध कम होगा और अगर गाय

बछड़ेको चाटकर साफ करे तो उसका दूध ज्यादा होगा। गायकी जीभ इतनी कड़ी होती है कि चाटते-चाटते बछड़ेकी चमड़ीसे खून आ जाता है, फिर भी गाय छोड़ती नहीं; क्योंकि उसको एक आनन्द आता है। वात्सल्य-प्रेममें गाय सब कुछ भूल जाती है। 'वत्स' नाम बछड़ेका है और बछड़ेसे होनेवाला प्रेम 'वात्सल्य-प्रेम' कहलाता है।

भगवान्‌को भक्तका काम करनेमें आनन्द आता है, प्रसन्नता होती है। मनुष्य भगवान्‌की इच्छाकी पूर्ति कर सकता है, इतनी इसमें योग्यता है। परंतु यह दर-दर भटकता फिरता है—तुच्छ टुकड़ोंके लिये, पैसोंके लिये, भोगोंके लिये! राम-राम-राम! किधर चला गया तू! भगवान्‌को आनन्द देनेवाला होकर अपने सुखके लिये भटकता है और लालायित होता है! भगवान् भक्तका काम करनेके लिये अपयश सह लेते हैं, तिरस्कार सह लेते हैं, अपमान सह लेते हैं! भगवान्‌ने भक्तको बहुत ऊँचा दर्जा दिया है। भगवान् कहते हैं—'**अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।**' (भागवत ९।४।६३) ***'मैं तो हूँ भगतनको दास भगत मेरे मुकुटमणि।'*** जिनकी स्फुरणामात्रसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना हो जाती है, ऐसे परमात्मा भक्तके वशमें हो जाते हैं और उसके इशारेपर नाचनेके लिये तैयार हो जाते हैं—***'ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पे नाच नचावें।'*** नौ लाख गायें नन्दजीके यहाँ दुही जाती थीं, पर गोपियोंपर भगवान्‌का इतना प्रेम था कि वे कहतीं—'लाला, तुम नाचो तो हम तुम्हें छाछ देंगी' तो वे छाछके लिये नाचने लग जाते! हृदयका प्रेम भगवान्‌को बहुत मीठा लगता है। भगवान्‌से कोई कामना नहीं, कोई इच्छा नहीं, केवल भगवान् प्यारे लगें, मीठे लगें—यह भक्तोंका भाव होता है। यह जो प्रेम है, वह दोनोंको भाता है अर्थात् भक्त भगवान्‌से आनन्दित होते हैं और भगवान् भक्तसे। भगवान् और भक्त आपसमें एक-दूसरेको देखकर आनन्दित होते रहते हैं। इतनी योग्यता रहते हुए भी मनुष्य दरिद्री हो रहा है, अभावग्रस्त हो रहा है, यह बड़े भारी आश्चर्यकी बात है! होशमें नहीं आता कि मैं किस दर्जेका हूँ और क्या कर रहा हूँ? तुच्छ चीजोंके पीछे पड़कर यह अपना कितना नुकसान कर रहा है! झूठ, कपट, बेईमानी आदि करके महान् नरकोंमें जानेकी तैयारी कर रहा है। जिसमें यह भगवान्‌की प्राप्ति कर सकता है, उस अमूल्य समयको बर्बाद कर रहा है। हद हो गयी! अब तो चेत करो! जो समय गया, सो तो गया, अब भी लग जाओ भगवान्‌में! संसारके कामको अपना काम न समझकर भगवान्‌का समझ लो, इतनेसे ही भगवान् प्रसन्न हो जायँगे!

पारस्परिक द्वेषका परिणाम

प्राचीन कालमें विभावसु नामक एक बड़े क्रोधी ऋषि थे। उनका छोटा भाई था सुप्रतीक, जो बड़ा तपस्वी था। सुप्रतीक अपने धनको बड़े भाईके साथ नहीं रखना चाहता था। वह नित्य बँटवारेके लिये कहा करता। विभावसुने अपने छोटे भाईसे कहा, 'सुप्रतीक! धनके मोहके कारण ही लोग उसका बँटवारा चाहते हैं और बँटवारा होनेपर एक-दूसरेके विरोधी हो जाते हैं। तब शत्रु भी उनके अलग-अलग मित्र बन जाते हैं और भाई-भाईमें भेद डाल देते हैं। उनका मन फटते ही मित्र बने हुए शत्रु दोष दिखा-दिखाकर वैर-भाव बढ़ा देते हैं। अलग-अलग होनेसे तत्काल उनका अधःपतन हो जाता है; क्योंकि फिर वे एक-दूसरेकी मर्यादा और सौहार्दका ध्यान नहीं रखते। इसीसे सत्पुरुष भाइयोंके अलगावकी बातको अच्छी नहीं मानते। जो लोग गुरु और शास्त्रके उपदेशपर ध्यान देकर परस्पर एक-दूसरेको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं, उनको वशमें रखना कठिन है। तू भेद-भावके कारण ही धन अलग करना चाहता है। इसलिये जा, तुझे हाथीकी योनि प्राप्त होगी।' सुप्रतीकने कहा, 'मैं हाथी होऊँगा तो तुम कछुआ होगे।' इस प्रकार दोनों भाई धनके लालचसे एक-दूसरेको शाप देकर हाथी और कछुआ हो गये। पारस्परिक द्वेषका यही परिणाम होता है। [महाभारत]

श्रीमद्भागवतकी 'समुद्रमन्थन'-कथाका तात्त्विक-विमर्श

(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

'समुद्र-मन्थन', साधककी दृष्टिसे आत्मनिरीक्षणकी आध्यात्मिक कथा है। यद्यपि अन्य पुराणोंमें भी इसका यथावसर संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किया गया है, तथापि श्रीमद्भागवतमें 'स्वरूपानुसन्धान' और 'आत्म-साक्षात्कार' की साधनाके रूपमें इसकी जैसी अभिव्यंजकता दिखलायी देती है, वैसी अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती। यहाँ इसके रस-रहस्यार्थका अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है।

श्रीमद्भागवतके अष्टमस्कन्धमें मनुओं तथा उनके मन्वन्तरोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है।

स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंके वर्णनके पश्चात् 'चाक्षुष' नामक मन्वन्तरमें भगवान्‌के अजितावतार और अमृत-प्राप्तिहेतु समुद्र-मन्थनकी कथा वर्णित हुई है। 'चाक्षुष' का आध्यात्मिक अर्थ है—अन्तर्दृष्टि, अपने भीतरके नेत्रोंको खोल देना। इसके बिना समुद्रमन्थन-रूप आत्मवीक्षण सम्भव भी नहीं है। समुद्र शब्द उन्दी क्लेदने धातुसे निष्पन्न होता है अर्थात् जो आर्द्र, क्लिन्न या जलमय होता है वह समुद्र है। अन्तःकरण भी रागमय होनेसे आर्द्र या मसृण है, अतः उसे समुद्र कहा जा सकता है। दूसरा अर्थ है **'मुद्रया सहितः इति समुद्रः'** जिसमें मुद्राएँ हों, वह समुद्र है। मुद्राका एक अर्थ है **'मुदं राति इति मुद्रा'** सुख दे, सुख-सुविधाके साधन उपलब्ध कराये, ऐसी सम्पत्ति रत्न आदि अथवा भंगिमा विशेष अवस्था। जैसे भौतिक-समुद्रमें ये तीनों अर्थ स्पष्ट रूपसे संगत हैं, वैसे आध्यात्मिक समुद्र (अन्तःकरण)-में भी ये अन्वर्थकता सिद्ध करते हैं। भौतिक समुद्रमें मणि-माणिक्य आदि रत्न हैं, अन्तःकरणमें सद्गुणोंके रत्न हैं, दैवीय तथा आसुरी सम्पत्तियाँ हैं। उसमें तरंगें हैं, ऊर्मि-माला है, तो यहाँ भी प्रतिक्षण परिवर्तमान चित्तकी विभिन्न वृत्तियाँ हैं। आधिदैविक क्षीरसमुद्रमें जैसे भगवान्‌की संवित्-शक्ति श्रीलक्ष्मीजी विराजमान हैं, वैसे ही साधकके अन्तःकरणमें परमसिद्धिरूपा चिच्छक्ति प्रच्छन्नरूपसे निवास करती हैं, किंतु इस सारे रहस्यको अज्ञानने मुद्रित कर रखा है। ढक रखा है, इसलिये भी अन्तःकरणको समुद्र कहना अन्वर्थक है—**'मुद्रितः आच्छादित इति समुद्रः'**।

समुद्र-मन्थनमें परस्परविरोधी दोनों पक्ष, देवता और असुर मिलकर सहयोग कर रहे हैं; क्योंकि अमृतकी प्राप्त्याशा दोनोंको ही है।

हमारे भीतर भी देवासुर-संग्राम नित्य ही चलता रहता है, हमारे सद्विचार ही देव हैं और असत् तथा उग्र विचार ही असुर हैं। ये दोनों ही कश्यपपुत्र हैं—**'वयं कश्यपदायादाः।'** (श्रीमद्भा० ८।९।७)

निरपेक्ष साक्षीरूप हमारा आत्मा ही कश्यप है। नैरुक्तिक प्रणालीके अनुसार जैसे 'हिंस' शब्दका वर्णव्यत्यय होकर सिंह तथा कर्ता शब्दका विपर्यय होकर तर्क बन जाता है, उसी प्रकार साक्षित्व-सूचक पश्यक (द्रष्टा) शब्द ही कश्यप बन जाता है। अन्तःकरणकी अनेक बाह्य प्रवृत्तियोंसे जुड़कर यही प्रजापति (अर्थात् जीव)-की संज्ञा प्राप्त करता है। देव और असुर (वृत्तिरूपसे) इसीकी सन्ततियाँ हैं—इनमें देवता अनुज और असुर अग्रज हैं और दोनों पक्षोंमें परस्पर विरोध है—स्पर्धा चलती रहती है—

'द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च। ततः कनीयसा एव देवा ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वपर्धन्त·····।' (बृहदारण्यक उपनिषद् १।३।१)

अमृत-प्राप्तिकी साधनामें हमें इन दोनोंका ही सहयोग लेना पड़ेगा। काम-क्रोधादि विरोधी भावोंको भी अमर तथा शाश्वत सुखका प्रलोभन देकर साधनमें उनका विनियोग करना होगा, अन्यथा वे सदा संघर्ष करते हुए हमें बहिर्मुख ही बनाये रखेंगे—

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे।

(श्रीमद्भा० ८।६।२०)

'आनन्द तथा समस्त सिद्धियाँ, हमारे सत्त्वगुणरूपी दुग्धसिन्धुमें ही निगूढ हैं। इतना ही नहीं, विश्वात्माकी चिच्छक्ति परमेश्वरी 'श्रीः' भी हमारे अन्तःकरणमें ही सुप्तरूपसे अन्तर्निहित हैं। हमारी कोई भी आराधना या उपासना तबतक सफल नहीं हो सकती, जबतक हम इन सिद्धियोंका सद्वृत्तियोंके साथ विनियोग करते हुए अपनी सुप्त समृद्धि अर्थात् अन्तश्चेतनारूपी भगवती

श्री:का विश्वात्मा भगवान् विष्णुसे परिणय न सम्पन्न करा दें। भगवान् श्रीहरि हमपर कृपा करके स्वयं ही हमारी सद्वृत्तिरूप दैवीशक्तियोंको उद्बुद्ध करते हैं—

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम्।
यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० ८।६।२१)

और यह आश्वासन भी देते हैं कि मैं प्रतिपद इसमें सहायता करूँगा, मार्ग-दर्शन करूँगा। अमृतोपलब्धिके अनन्तर मैं अपनी योगमायासे तुम्हारी आसुरी-वृत्तियोंको अनन्तकालके लिये सम्मूर्छित कर दूँगा। अमृतका आस्वादन तुम्हारी सद्वृत्तियाँ ही कर पायेंगी—

सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः।
क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः॥

(श्रीमद्भा० ८।६।२३)

मन्दराचल[1] हमारा संसारके प्रति अखण्ड विश्वास है। यह बहुत सुन्दर तथा चाकचिक्यपूर्ण प्रतीत होता है। इसीलिये भागवतकारने इसे सुवर्ण-पर्वत कहा है। इसे भौतिक भूमिसे बलपूर्वक उखाड़कर जबतक हम अन्त:वारिधिमें प्रविष्ट नहीं करायेंगे, तबतक साधनारम्भ नहीं होगा। अनन्त जन्मोंकी परम्परासे सांसारिक विषयोंमें गहरेतक पैठे इस विश्वासके अचलको चलायमान करना यद्यपि कठिन कार्य है, किंतु सम और विषम दोनों वृत्तियाँ मिलकर जब शक्ति लगाती हैं, तो यह उखड़ जाता है, आशय यह है कि यदि कोमल सद्वृत्तियोंके प्रेरित करनेपर यह विश्वास वहाँसे विस्थापित न हो, तो संसार और उसके स्वरूपके प्रति घृणा, क्रोध, अमर्ष, उपेक्षा-जैसी विषम-वृत्तियोंका आश्रय लेकर भी उससे अपने आपात-रमणीय विश्वासको हटाना चाहिये। हमारी ये वृत्तियाँ विश्वासको संसारसे हटानेका ही कार्य कर सकती हैं, उसे अन्त:साधनासे जोड़ना तो भगवत्कृपाका ही कार्य है, इसलिये भगवान् गरुडध्वज ही यह कार्य भी सम्पादित करते हैं—

तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान्।
विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः॥
गिरिपातविनिष्पिष्टान् विलोक्यामरदानवान्।
ईक्षया जीवयामास निर्जरान् निर्व्रणान्यथा॥

(श्रीमद्भा० ८।६।३७-३८)

मन्दराचलको 'मन्थनदण्ड' बना लेनेपर अब किसी सुदृढ़ 'मन्थनरज्जु' अर्थात् रस्सीकी आवश्यकता होती है, यह कार्य 'वासुकि'के द्वारा सम्पादित किया जाता है। नागराज वासुकि हमारी प्राणशक्तिका प्रतीक है। दृढ़ विश्वासके साथ अन्त:करणका आलोडन करना संयत-प्राण महापुरुषका ही कार्य है, फिर भी मन्थन सफल नहीं हो पाता। प्राण-परिवीत होनेपर भी विश्वासको कोई आधार नहीं मिलता, अत: वह डगमगाने लगता है—

'मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारोऽह्यपो विशत्।'

(श्रीमद्भा० ८।७।६)

इस साधनामें अनेक आधिदैविक विघ्न आते हैं, जिनसे साधकका पौरुष शिथिल होने लगता है, तब स्वयं भगवान् कूर्मरूप धारण करके पर्वतको अपने पृष्ठपर आधार देते हैं।

कूर्म बहिर्वृत्तियोंकी संकोचक निष्ठाका प्रतीक है—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २।५८)

सुप्रसिद्ध पंचप्राणोंके सहवर्ती पाँच और उपप्राण होते हैं, जो योगियोंकी आध्यात्मिक साधनाके सन्दर्भमें अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। उनके नाम हैं नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। विश्वासको नागसे निवीत करके उसे 'कूर्म' नामक प्राणशक्तिका आधार देना पड़ता है। वस्तुत: भगवान् ही स्वयं प्राणात्मा बनकर साधनाका आधार प्रस्तुत करते हैं। नीचे आधार मिल जानेपर भी पर्वत सीधा खड़ा नहीं रह पाता, अत: श्रीहरि स्वयं सहस्रबाहु बनकर उसे ऊपरसे दबा लेते हैं। यह 'कृकल-प्राण' का कार्य है। इसके पश्चात् वासुकिके मुखसे निर्गत विषाग्निके द्वारा पीड़ित देवताओं और असुरोंको भगवान् मेघोंसे वर्षा करवाकर समुज्जीवित करते हैं, यौगिक साधनामें यह 'देवदत्त' नामक प्राणकी प्रक्रिया है। इतनेपर भी जब अमृत नहीं निकलता है, तो वे स्वयं मन्थन करने लगते हैं—

'यदा सुधा न जायते निर्ममन्थाजितः स्वयम्।'

(श्रीमद्भा० ८।७।१६)

धनंजय नामक प्राण सर्वव्यापक अजितका प्रतीक है। मृत्युके समय शरीरसे अन्य सभी प्राण उत्क्रान्त हो

१-'मन्दं राति सुखयतीति मन्दरः' जो अज्ञानीको सुख दे—वह मन्दर है, दूसरी व्युत्पत्ति है 'मनः दारयतीति मन्दरः' जो मनको भग्न कर दे, वह 'मन्दर' है। सांसारिक विश्वास ये दोनों कार्य करता है।

जाते हैं, किंतु धनंजय कुछ समयतक शवमें ही व्याप्त रहता है। योगीकी अन्तर्साधनामें जबतक इसका विनियोग नहीं होता, तबतक 'अमृत-मन्थन' सम्भव नहीं होता। भगवान्‌का उक्त कार्य तात्त्विक दृष्टिसे इसी पाँचवें यौगिक प्राणवायुकी प्रक्रियाका संकेत है।

अमृतप्राप्तिके लिये आरम्भ किये गये इस आयोजनमें सर्वप्रथम अत्युग्र हालाहल-विषका प्राकट्य होता है—अन्त:करणका आलोडन करनेपर साधकको सर्वप्रथम अपनी अनन्त बुराइयोंका समूह ही दिखलायी पड़ता है। अब यदि उसने इस उग्र पापानुभूतिरूपी गरलको अपनी शिवदृष्टिसे जीर्ण नहीं कर लिया तो फलावप्तिका क्रम यहीं विच्छिन्न हो जाता है। चतुष्पात् 'धर्म' ही 'वृष' है, इसको जो सदा अपने हृदयमें अंकित रखता है, वह वृषांक है अर्थात् विश्वकल्याणरूप धर्माचरण ही आध्यात्मिक शिवतत्त्व है। केवल शिवको ही महादेवकी संज्ञा प्राप्त हुई है, यह भगवत्प्रेमका ही विश्वकल्याणकारी रूप है। समुद्र-मन्थनसे उत्पन्न हालाहलकी उग्रज्वालाको जब भगवान् शंकर आत्मसात् कर लेते हैं, तब आगे दूसरे क्रममें कामधेनुका प्रादुर्भाव होता है। पाप-बोधसे विशुद्ध हुई बुद्धि ही कामधेनु है—

'शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः'

जब इस शुद्ध बुद्धिकी उद्भूति होती है, तब साधकका प्रसुप्त ब्रह्मवर्चस् जाग्रत् होकर मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी संज्ञा प्राप्त करता है और अपने-आप यज्ञकी परम्पराका विस्तार होने लगता है, इसीको सूचित करते हुए भागवतकार कहते हैं—

'तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः।'

(श्रीमद्भा० ८।८।२)

इसके पश्चात् उच्चै:श्रवा नामक दिव्य अश्व उद्भूत होता है, उसको असुरराज बलि ग्रहण कर लेता है, भगवान्‌के संकेतसे देवराज इन्द्र उसकी स्पृहा नहीं करते। इसका क्या रहस्य है? 'बलि', शारीरिक बल अर्थात् ऊर्जाका प्रतीक है। शारीरिक बलका संरक्षक 'शुक्र' (मानव-शरीरकी चरम धातु) है। इसीलिये बलिके गुरु शुक्राचार्य हैं। उच्चै:श्रवा अश्वशक्ति अर्थात् भौतिक ओजस् है। इन्द्र इन्द्रियशक्तिके प्रतीक हैं। इन्द्रियशक्ति सूक्ष्म और बुद्धिपर्यवसायिनी है, अत: बुद्धिके स्वामी बृहस्पति इन्द्रके गुरु हैं। इन्द्रको समुद्रसे समुद्भूत दिव्य गज ऐरावत या ऐरावण प्राप्त होता है। यह बौद्धिक ओजस्‌का प्रतीक है। अब कौस्तुभ, पारिजात, अप्सराएँ आदि अन्य रत्न निकलते हैं। इन सबमें कौस्तुभ नामक पद्मरागमणिको भगवान् अपने वक्ष:स्थलके अलंकरणहेतु ग्रहण कर लेते हैं, शेष रत्न अभी अवितीर्ण रहते हैं—

कौस्तुभाख्यमभूद् रत्नं.....।
तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ।

कौस्तुभ स्वयं भगवान्‌की आत्मज्योति है—

कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः।

(श्रीमद्भा० १२।११।१०)

यह साधकके अन्त:करणका विशुद्ध राग है, भगवान् इसे अपने हृदयमें धारण करके, साधकको धन्य कर देते हैं और तब जो अपरिमित समृद्धि भगवती श्रीके रूपमें प्रकट होती है, वह जगद्वन्द्या कल्याणी स्वयं भगवान् परमपुरुषका वरण कर लेती हैं। अन्त:साधनासे समुद्भूत परमसिद्धिका परमेश्वरसे परिणय हुए बिना साधनामें समुत्कर्ष आ भी तो नहीं सकता—

वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम्॥

(श्रीमद्भा० ८।८।२३)

इसके अनन्तर वारुणी-मदिराके रूपमें मायाकी बहिरंगा शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे असुर स्वयं ग्रहण करके उसीमें भ्रान्त हो जाते हैं, तब इतनी दीर्घ-साधनाके पश्चात् अमृत उद्भूत हो पाता है। श्रीहरि स्वयं अपने धन्वन्तरिरूपसे उसको धारण किये प्रकट होते हैं और अपने जगन्मोहन योषिद्रूपके द्वारा इसे केवल दैवी-शक्तियोंको ही प्रदान करते हैं।

इस प्रकार समुद्र-मन्थनकी यह भागवती कथा **'मृत्योर्मा अमृतं गमय'** की श्रौतसमर्चनाका ही निष्यन्दित रस है, जिसको तत्त्वदृष्टिसे समझ लेनेपर फिर और कुछ जानना-समझना शेष नहीं रह जाता। साधकका सारा अध्यवसाय, सारे उद्यम इसीके कीर्तनानुश्रवणमें पर्यवसित और परिपूर्ण हो जाते हैं।

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो
न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित्॥

(श्रीमद्भा० ८।१२।४६)

नाम-साधनाके सूत्र

(मानस केसरी पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र 'रामायणी')

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

उत्तम होकर भी अपनेको तृणसे भी तुच्छ माने। वृक्षोंके समान दो प्रकारसे सहिष्णु बने। जैसे वृक्ष काटे जानेपर भी कुछ नहीं कहता और सूखकर मर जानेपर भी किसीसे पानीतक नहीं माँगता, कोई कुछ भी माँगता है, तो उसको अपनी सम्पत्ति भी दे देता है। वर्षा, गर्मी, शीत सहकर भी दूसरोंकी सदैव रक्षा ही करता है।

वैष्णव उत्तम होकर भी अभिमानशून्य हो और भगवन्नामका अधिष्ठान जानकर जीवमात्रका सम्मान करे, इस प्रकार जो भगवन्नामका आश्रय लेता है, उसमें भगवच्चरणोंके प्रति प्रेमका प्रादुर्भाव होता है।

'तृणादपि सुनीचेन' तृणकी अपेक्षा भी तुच्छ होकर भगवन्नामका आश्रय लेना होगा। उत्तम होकर धन, जन, कुल, मान, विद्या, भक्ति इत्यादि सब विषयोंमें सर्वश्रेष्ठ भी यदि हो तो साधक अपनेको सब विषयोंमें सबकी अपेक्षा हेय माने।

तृण अत्यन्त तुच्छ वस्तु है, किंतु यह तृण भी गाय आदिकी सेवामें अपनेको लगाकर गौरवान्वित होता है, गृह आदिके निर्माणमें सहायता करके भी गरीबोंका बहुत उपकार करता है। प्रत्यक्ष भावसे अथवा परोक्ष भावसे तृण भगवत्सेवामें सहायक होता है, किंतु मेरे द्वारा किसीका किसी भी प्रकारसे कोई उपकार नहीं होता, भगवत्सेवामें किसीको किसी भी प्रकारकी सहायता नहीं मिलती, अतः मैं तृणकी अपेक्षा भी अधम हूँ। मेरे समान अधम और कोई नहीं है, इत्यादिका चिन्तन करते हुए साधक अपनेको तृणकी अपेक्षा हेय (नीच) माने। ये सभी बातें केवल कहनेमात्रकी नहीं हैं, इससे काम नहीं चलनेवाला—जबतक साधकके मनमें इस तरहके भावकी अनुभूति न हो, जबतक मनसे, प्राणसे वह अपनेको तृणकी अपेक्षा भी हेयका अनुभव न करे, तबतक उसका तृणादपि सुनीच भाव सिद्ध नहीं होगा। **'तरोरपि सहिष्णुना'** वृक्षके समान सहनशील होकर भगवन्नामका आश्रय लेना चाहिये। वृक्ष जैसे दो प्रकारसे सहिष्णु होता है, वैसे ही साधकको भी दो प्रकारसे सहिष्णु होना चाहिये।

वृक्षकी पहली सहिष्णुता, कोई भी व्यक्ति यदि वृक्षको काट ले, तो वृक्ष उसे कुछ नहीं कहता और न ही किसी भी प्रकारकी आपत्ति प्रकट करता और न ही दुःख प्रकट करता है, ऐसी है वृक्षकी सहिष्णुता। जो नामका फल—भगवत्प्रेम पानेकी इच्छा करे, उसको इसी प्रकारसे सहिष्णु बनना चाहिये। कोई दूसरा भी यदि उसका किसी भी प्रकारसे अनिष्ट करे, यहाँतक कि उसका प्राण लेने भी आये तो वह उसको कुछ न कहे। उसके कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा भी न दे, मनसे भी अनिष्टकारीके प्रति रुष्ट न हो, किसी भी प्रकारसे तनिक भी विचलित न हो। वृक्षकी दूसरी सहिष्णुता वर्षाके अभावमें यदि वृक्ष सूखकर मर भी जाय तो भी वह किसीसे जलकी याचना नहीं करता, स्थिर भावसे खड़ा-खड़ा जलके अभावका कष्ट सहता रहता है, इतनी है वृक्षकी सहिष्णुता (सहनशीलता)। नामका मुख्य फल भगवत्प्रेम पानेके लिये साधकको भी इसी प्रकारसे सहिष्णु होना चाहिये। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—जो कोई भी दुःख या विपत्ति क्यों न उपस्थित हो, साधक अविचल चित्तसे प्रसन्नतापूर्वक उसको सहन करे। दुःख-विपत्तिसे उद्धारकी आशासे किसीसे भी किसी भी प्रकारकी सहायताकी प्रार्थना न करे, सब कुछ अपने किये हुए कर्मोंका फल मानकर अविचलित मनसे सहन करे।

वृक्षके और भी गुणोंकी यदि बात की जाय तो वृक्षसे जो, जो कुछ भी माँगता है, वृक्ष उसे अपने पासकी सारी सम्पत्ति, पत्र, पुष्प, डाल और फलमेंसे वही दे देता है, और तो और कोई उसकी डाली काटे, यहाँतक कि जड़से भी काट डालनेपर भी वह उसे पत्र, पुष्प, डाल, शाखा अपना सर्वसमर्पण कर देता है, उसे अपना शत्रु समझकर निराश नहीं करता।

नाम साधकको भी इसी प्रकार उदार चित्तवाला

होना चाहिये। जो कुछ चाहो अपनी सामर्थ्यके अनुसार उसको वह चीज अवश्य दे। यदि कोई शत्रुताका भी व्यवहार करता है और किसी चीजकी याचना करे तो उसे निराश नहीं करना चाहिये, यथासामर्थ्य उसे वह चीज दे देना चाहिये तथा अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसकी भावनाओंका आदर करे।

वृक्ष स्वयं तो धूपमें जला जा रहा है, घोर वर्षामें जलसे लथपथ है, ऐसे समयमें भी उसकी छायामें यदि कोई अपनी गर्मी शान्त करना चाहे तो भी वह बेचारा उसको आश्रय देकर उसकी रक्षा ही करता है। स्वयं तो कष्ट सहकर भी वृक्ष जीवका उपकार ही करता है। भगवन्नाम-साधकको भी इसी प्रकारसे होना चाहिये, स्वयं न खाकर, भूखेको अन्न, भोजन दे। स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरोंकी सहायता करनी चाहिये। यदि कोई शत्रुताका व्यवहार भी करता है, तो भी उसकी सहायता करनी चाहिये। जो पेड़की शाखाओंको काटते हैं, पेड़ उन्हें भी अपनी शीतल छाया प्रदान करते हैं।

'अमानिना मानदेन' स्वयं किसी भी प्रकारकी सम्मान-प्राप्तिकी आशा न करके दूसरोंको सम्मान दे। धन, मान, कुल, विद्या, बुद्धि एवं भक्तिमें श्रेष्ठ होनेपर भी श्रीवैष्णव अपने मनमें धन-मानादिका अभिमान या गर्व न करे। मैं धनी हूँ, मैं बहुत बड़ा भक्त हूँ, नित्य भजन करता हूँ आदि मानकर वह किसीसे भी सम्मान-प्राप्तिकी आशा न करे, इस तरहकी बातें साधकके मनमें किसी भी प्रकारसे नहीं आनी चाहिये। अपनी अपेक्षा सब विषयोंमें निकृष्ट कोई भी व्यक्ति उसके प्रति किसी भी प्रकारकी अवहेलना करे तो भी वह मनसे जरा भी नाराज न हो।

प्रत्येक जीवमें परमात्मा विराजमान है, यह मानकर जीवमात्रका सम्मान करे। किसीका भी मन, वचन, कर्मसे अनादर या तिरस्कार न करे और तो और साधारण जीव-जन्तुकी भी अवहेलना न करे, क्योंकि जो परमात्मा आपके अन्दर है, वही उस प्राणीमें भी विराजमान है।

प्रत्येक जीवमें परमात्मारूपमें भगवान् ही प्रतिष्ठित हैं। अतएव प्रत्येक जीव भी भगवान्‌के मन्दिरकी तरह पूजनीय है। मन्दिर यदि संस्कारविहीन भग्न, विकृत, अपरिष्कृत, अपरिछिन्न होनेपर भी जिस प्रकार भक्तके लिये पूजनीय है, उसी प्रकार कोई भी जीव सामाजिक दृष्टिसे नीच होनेपर भी भगवद्भक्तोंके लिये वन्दनीय है; क्योंकि उसमें भी परमात्मा विद्यमान है। ब्राह्मण तो वन्दनीय सम्माननीय है ही, चाण्डाल एवं कुत्ता भी सम्मानका अधिकारी है। अन्तर्यामीरूपमें सबमें उस परमात्माका निवास है, ऐसा मानकर सबको सम्मान देनेकी चेष्टा करनी चाहिये, उनका अपमान न करे, न ही उनका तिरस्कार करे। ऐसे भाव (आन्तरिक भाव)-से उनका सम्मान करे।

कीर्तनीयः सदा हरिः—वैष्णव जनोंको सदैव संकीर्तन करते रहना चाहिये। अपनेको तृणकी अपेक्षा भी हेय मानकर सदैव भगवच्चिन्तन करते हुए संकीर्तन करते रहना चाहिये। वृक्षकी तरह सहनशील होकर, सर्वोत्तम होकर भी अपने लिये सम्मानकी अपेक्षा न करके, सब जीवोंमें भगवद्बुद्धि रखते हुए सबका सम्मान करते हुए भगवान्‌का भजन करे और भगवत्प्रेमकी मनमें अभिलाषा रखे।

भगवन्नामकी साधनासे भगवत्प्रेम उत्पन्न हो सकता है, किंतु मायाके वशीभूत जीवोंके लिये यह भाव सुलभ नहीं है, यह भी साधन-सापेक्ष है। यह भाव पानेके लिये नित्य संकीर्तन करे एवं भगवच्चरणोंमें प्रार्थना करे, मनसे नित्य-निरन्तर नामका आश्रय लेनेसे नामकी ही कृपासे साधकके मनमें तृणादपिका भाव उत्पन्न हो सकता है तथा नाम-संकीर्तनके प्रभावसे भगवत्प्रेमका उदय हो सकता है, अन्यथा नहीं।

भगवन्नाममें सम्पूर्ण पापोंका शमन (नाश) करनेकी शक्ति है, भगवत्प्रेमके आविर्भावके लिये मनमें नवधा-भक्तिका उदय होने लगता है। प्रेमके उदय होनेपर प्रेमके विकार—स्वेद, पुलक, गद्‌गद वाणी, अश्रुधार आदि अष्ट सात्त्विक भाव उदय होने लगते हैं।

भगवन्नामके आश्रयसे ही भव-बन्धनका नाश हो जाता है, एक बार राम-नामके उच्चारण करनेमात्रका यह फल है, तो यदि सीताराम-सीतारामका संकीर्तन किया जाय और तब भी भगवत्प्रेमका उदय न हो, अश्रुधार न बहे, तो यह समझ लेना चाहिये कि अनेक

जन्मोंके संचित अपराधोंके कारण ही श्रीसीतारामनामरूपी बीजका अंकुरण नहीं हो रहा है।

जिसमें नामापराध संचित है, भगवन्नामका आश्रय लेनेपर उसका नामापराध दूर हो सकता है। अपराध दूर होनेसे ही भगवत्प्रेमके उदय होनेकी सम्भावना होगी।

जिसमें वैष्णव अपराध नहीं है, एक बार सीताराम नाम ग्रहण करते ही उसके हृदयमें भगवत्प्रेमका उदय होता है, किंतु जिसमें अपराध है। बार-बार नाम-संकीर्तन करनेपर भी उसमें भगवत्प्रेमका उदय नहीं होता। फिर भी अपराधीको हताश होनेकी आवश्यकता नहीं है, जिस कारणसे अपराध हुआ है, यह जान लेनेपर आन्तरिक भावसे उसके चरणोंमें क्षमा-प्रार्थना करके उसके प्रसन्न हो जानेपर ही अपराधका शमन होगा। कहाँसे कैसे अपराध हो रहा है, इसका भान न होनेपर एकान्तभावसे भगवन्नामका आश्रय-ग्रहण '**तृणादपि**' श्लोकके अनुसार करनेपर राम-नाम महाराजकी कृपासे अपराध दूर हो सकते हैं और अपराध दूर होनेपर ही भगवत्प्रेमोदयकी सम्भावना हो सकती है। जिसमें कोई अपराध नहीं है, उसकी तो तृणादपिके अनुरूप चित्तकी अवस्था सहज हो जाती है।

जबतक देहका आवेश—देहाध्यास रहता है, तभीतक विद्या, कुल, धन-सम्पत्ति आदिका अभिमान रहता है और जबतक चित्तमें किसी भी प्रकारका अभिमान रहेगा, तबतक तृणकी अपेक्षा सुनीच भी नहीं हुआ जा सकता। वृक्षके समान सहिष्णु भी नहीं हुआ जा सकता। मान-सम्मानकी आशाका भी त्याग नहीं हो सकता, सभी जीवोंका सम्मान भी नहीं किया जा सकता, तबतक अपराधका बीज उसके अन्दर विद्यमान रहेगा।

तृणादपिमें जो प्रभुने कहा उसका सार मर्म यही है, अभिमान अर्थात् देहावेश, देहाध्यासका त्याग।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

शिव-स्तुति

(श्रीशिवजी मृदुल)

अज अजर अमर अलख अनादि शिव नमो नमः।
पंच-तत्त्व ब्रह्ममूल आदि शिव नमो नमः॥
आप दिगदिगंत में, अनन्त तेज नाद में।
चर-अचर, सगुण-निगुण, अद्वैत द्वैतवाद में॥
सत्य धर्म न्याय के निमित्त नित्य अवतरौ।
आप हो महान् शिव, कृपा करो, कृपा करो॥

आप ही हिरण्यगर्भ उर्वरा वसुन्धरा।
आप बीज रूप में सतत जगत्-परम्परा॥
आप आत्म तत्त्व बन समष्टि व्यष्टि में रमे।
तर्क ज्ञान चेतना विवेक दृष्टि में रमे॥
आप मेघवृष्टि बन सदैव सृष्टि संचरौ।
हे कृपानिधान शिव, कृपा करो, कृपा करो॥

आप आदिशक्ति हो विरंचि विष्णु हो हरे।
सूर्य चन्द्र इन्द्र यम कुबेर अर्चना करे॥
आप सर्व सम्पदा असीम रत्नकोश हो।
आप मन्मथारि शिव महेश आशुतोष हो॥
नाथ हो त्रिलोक के त्रिलोक हर्ष से भरो।
हे दयानिधान शिव, दया करो, दया करो॥

चन्द्रधर त्रिनेत्रधर त्रिपुण्ड भालधर हरे।
व्याघ्रचर्म कर त्रिशूल मुण्डमालधर हरे॥
गंगधर भुजंगधर भभूत अंग धर हरे।
विघ्न रोग दोष दुःख, पाप ताप हर हरे॥
नाथ व्याधिग्रस्त हूँ समस्त व्याधियाँ हरो।
हे दयानिधान शिव, दया करो, दया करो॥

भव भँवर फँसा रहा धरा न ध्यान आपका।
जानता न नाथ वन्दना विधान आपका॥
लोभ मोह काम में सदैव लालसा रही।
नाथ आज आपसे विनम्र प्रार्थना यही॥
आप में रमे हृदय, हृदय सदा रमा करो।
हे कृपानिधान शिव, कृपा करो, कृपा करो॥

भक्तिके चरम भावोंसे ब्रह्मकी प्राप्ति

(श्रीहनुमानप्रसादजी अग्रवाल)

अध्यात्ममें प्रवचन सोनेकी तरह है, तो प्रार्थना-भजन आदि सोनेकी भस्मकी तरह है। कहा गया है—***मूल्यवती होती है सोनेकी भस्म यथा सोनेसे।*** सोना मूल्यवान् है, किंतु सोनेकी भस्म उससे अधिक मूल्यवान् है। सोनेकी भस्म एक ऐसी महौषध है, जो शरीरको कई घातक बीमारियोंसे मुक्ति दिलाती है। प्रवचनसे मुख्यतया ज्ञानकी प्राप्ति होती है। ईशका स्मरण होता है। प्रार्थना-भजन आदिके द्वारा अन्तरमें भक्ति-भाव आते हैं। जो हमें आत्मरूप बनाते हैं। और परमात्माकी शरणमें ले जाते हैं। पूर्णत: शरणागत होनेपर ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। जो जीवके लिये अन्तिम मंजिल है। पारलौकिक तो है ही इहलौकिकमें भी भक्तिद्वारा मानसिक चिन्ताएँ दूर होती हैं। शारीरिक और मानसिक बीमारियोंमें मानसिक चिन्ताएँ ही सबसे बड़ी बीमारी हैं।

भक्तिद्वारा हर चिन्तासे निजात मिलती है। भक्तिद्वारा किसी भी मानसिक या शारीरिक पीड़ाको सहनेकी महान् शक्ति मिलती है। ज्ञानमें तो दूर-दूरतक मैंपनके अहंकारका मानसिक विकार रह जाता है। किंतु भक्तिमें तो कोई भी मानसिक विकार सूक्ष्म रूपमें भी टिक नहीं पाता है। मन-मन्दिर उज्ज्वल विकाररहित हो जाता है और निर्मल मनमें ही पूर्णब्रह्म परमात्माका वास होता है। यह अक्षरश: सत्य है। '**अहं ब्रह्मास्मि**' यानी 'मैं ब्रह्म हूँ' अष्टावक्रगीतामें भी कहा गया है—

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।
अयमेव हि मे बन्ध असिद्धा जीविते स्पृहा॥

यानी मैं न देह हूँ, न जीव हूँ। जीवनमें चेतन आत्मा और जड़ शरीर दोनोंका समन्वय है। मैं तो केवल चेतन आत्मा ही हूँ। गीताजीके भी अठारहवें अध्यायमें है—'**त्वया ततं विश्वमनन्तरूप**' यानी हे परमेश्वर! आप ही विश्वमें अनन्त रूपोंमें व्याप्त हैं। यानी '**अहं ब्रह्मास्मि**' पूर्णत: सत्य है, फिर भी गीताजीका मूल मन्त्र '**वासुदेव: सर्वम्**' है। वास्तवमें '**अहं ब्रह्मास्मि**' ज्ञान है, इसमें जीवरूप साधकको मैं ब्रह्म हूँ—ऐसे अहंकारके भाव आ सकते हैं। किंतु '**वासुदेव: सर्वम्**'-से तो ईश-शरणागति भक्तिके भाव ही आते हैं। फलत: जीवरूप साधकके मनमें कोई भी अहंकारका भाव आनेकी सम्भावना नहीं रहती। और जब साधकका मन पवित्र- निर्विकार हो जाता है तो साधक आत्मरूप हो जाता है। आत्मा तो परब्रह्म परमात्माका ही सूक्ष्म अंश है। आत्मरूप साधक व्यष्टि है, तो परमात्मा समष्टि है। फलस्वरूप व्यष्टिका समष्टिसे योग हो जाता है। निर्विकार हुए आत्मरूप साधकका निर्विकार पूर्णब्रह्म परमात्मासे योग हो जाता है। साधकको ज्ञान हो भी गया, किंतु ईश-भक्तिके भाव नहीं आये तो वह ज्ञान सर्वथा अधूरा है। मानसमें भी कहा गया है—

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहीं सोऊ॥

(रा.च.मा. ७। ४५। ३-४)

यानी प्रथमत: ज्ञान कठिनतासे होता है और ज्ञान हो भी जाय तो भी उसमें तरह-तरहकी बाधाएँ हैं। अति कष्टसे यदि मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर भी लेता है, तो भी जबतक अन्त:करण भक्तिके उत्तम भावोंसे सराबोर नहीं हो जाता। वास्तवमें साधकका ईश्वरसे योग नहीं हो पाता आध्यात्मिक पुस्तकोंका अध्ययनकर तथा प्रवचन सुनकर साधकका ईश्वर सम्बन्धित ज्ञान बढ़ता है तथा कुछ ईश्वरीय भाव भी आते हैं, पर भजन-प्रार्थनाद्वारा साधक भावमय हो जाता है और उन ईशके प्रबल भावोंसे भावमय होकर भजन या प्रार्थनाकालमें साधक जड़ शरीर-संसारको पूर्णतया भूल जाता है और सच्चिदानन्द परमात्मामें लीन हो जाता है, मगन हो जाता है। इससे भी अधिक भाव तन्मयताकी स्थिति वह है कि जब जाग्रत् सुषुप्ति आ जाती है। साधक परब्रह्मके भावोंमें पूर्णत: लीन हो जाता है। अगल-बगलमें क्या हो रहा है, साधकको इसका भान नहीं रहता और तो और अपने शरीरकी सुध-बुध भी नहीं रहती। ऐसी दुर्लभ अवस्था मीराजीको प्राप्त हुई थी—

ऐसी लागी लगन मीरा हो गई मगन।
वह तो गली-गली हरी गुण गाने लगी।

ऐसी ही अवस्था रामकृष्ण परमहंसदेवको प्राप्त हुई थी, जो अपनी सुध-बुध भूल जाते थे। विदुर-पत्नी ईश्वर प्रेमके भावोंमें ऐसी खोयीं कि भगवान्‌को केलाकी जगह केलेके छिलके खिलाने लगीं और प्रेमरसपूरित केलेके छिलके भगवान् भी प्रेमपूर्वक खाने लगे। गोपियाँ भी ईश्वर-प्रेमके भावोंमें ऐसी मगन हो जाती थीं कि उन्हें अपने घर-परिवार और अपने शरीरतककी सुध-बुध नहीं रहती थी।

मानसमें हरिनाम

(वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा)

एक बार श्रीवृन्दावनधाममें अनन्तश्रीविभूषित प्रातःस्मरणीय श्रीमहाराजजी (श्रीहरिबाबाजी)-के जन्म-महोत्सवपर १००८ श्रीश्रीगंगेश्वरानन्दजी महाराजने अपने दिव्योपदेशमें कहा था—'गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने मानसमें बहत्तर चौपाइयों और नौ दोहोंमें रामनामकी जैसी महिमा गायी है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

(रा०च०मा० १।२२।८)

चारों युगों और चारों वेदोंमें नामका प्रभाव है। परन्तु विशेषकर कलियुगमें और कोई उपाय (राम नामको छोड़कर) है ही नहीं।

इसकी पुष्टि अन्यत्र कई जगह की गयी है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—अकथनीय अनुपम ब्रह्मसुखको चाहनेवाले योगिजनो! आप क्यों व्यर्थ ज्ञानरूपी प्रपंचमें पड़े हो, आप केवल जिह्वासे रामनामका जाप कीजिये। फिर आपको स्वयमेव अकथनीय ब्रह्मसुखका अनुभव प्राप्त हो जायगा।

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

(रा०च०मा० १।२२।१-२)

जो सज्जन गूढ़ तत्त्व जाननेके इच्छुक हैं, वे भी जिह्वाद्वारा रामनामका जपकर गूढ़ तत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥

(रा०च०मा० १।२२।३)

अरे भाई, आपको आठों सिद्धियाँ चाहिये, तो भी अन्य कोई साधनकी आवश्यकता नहीं है। आप केवल रामनामका ही जप कीजिये। आप अणिमादिक आठों सिद्धियाँ प्राप्तकर सिद्ध हो जायँगे।

साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

(रा०च०मा० १।२२।४)

संकटग्रस्त दीन-दुखी भाइयो! क्यों दुखी होते हो! रामनामका आर्तभावसे स्मरण कीजिये। आपका भारी कुसंकट मिट जायगा। दुःखके बादल छँट जायँगे और आप सुखी होंगे।

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

(रा०च०मा० १।२२।५)

पापकर्मा मनुष्योंको भी गोसाईंजीने अभयदान दिया है—

पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥

(रा०च०मा० ४।२९।३)

परंतु आप यह मत सोचिये, कि अभी क्या जल्दी है। अन्त समयमें हरि-स्मरण कर लेंगे। यह आपकी बड़ी भारी भूल है। अन्त समयमें भगवान्‌का स्मरण करना बड़ी टेढ़ी खीर है। अनेक जन्मोंका अभ्यास होनेपर भी मुनिजन अन्त समयमें राम-नाम लेना भूल जाते हैं।

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

(रा०च०मा० ४।१०।३)

इस प्रकार देखेंगे कि रामचरितमानसमें नाम-महिमाके अनेक प्रसंग हैं।

गोसाईंजी कहते हैं—मैं रामनामकी महिमा कहाँतक कहूँ, स्वयं राघवेन्द्रसरकार भी रामनामका गुण गानेमें असमर्थ हैं—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(रा०च०मा० १।२६।८)

जिसके एक बार नाम-स्मरण करनेसे मनुष्य अपार भवसागरसे पार हो जाते हैं।

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥

(रा०च०मा० २।१०१।३)

इसी प्रसंगमें (सत्संगमें) एक बार एक सन्तके श्रीमुखसे एक अपूर्व दृष्टान्त सुना था। लीजिये, आप भी उसका रसास्वादन कीजिये—

एक मनुष्यने यावज्जीवन कोई सत्कर्म नहीं किया।

अन्त समयमें केवल एक बार रामनामका स्मरण किया। मरणोपरान्त यमदूत उसकी जीवात्माको लेकर यमराजके पास पहुँचे।

चित्रगुप्तने उस जीवात्माके शुभाशुभ कर्मका ब्यौरा यमराजके समक्ष प्रस्तुत किया और कहा—'भगवन्! इस दुरात्माने कभी भूलकर भी कोई सत्कर्म नहीं किया। केवल एक बार रामनामका उच्चारणमात्र इसका शुभ कर्म है।'

यमराजने व्यवस्था देते हुए उस जीवात्मासे कहा—'तुम्हारे दुष्कर्मोंके फलस्वरूप तुम्हें दीर्घकालतक रौरवीय यातनाएँ दी जायँगी। केवल एक बार राम-नाम-उच्चारणरूप शुभ कर्मके फलस्वरूप तुम्हें यह रियायत दी जाती है कि तुम चाहो तो राम-नामके स्मरणजन्य पुण्यका लाभ, दुष्कर्मोंकी यातनाएँ भोगनेसे पूर्व ले सकते हो।'

जीवात्मा बोला—'भगवन्! यह आपकी बड़ी कृपा है, मैं पहले राम-नाम-उच्चारणजन्य फलका लाभ उठाना चाहता हूँ, फिर दुष्कर्मोंकी यातनाएँ तो भोगनी ही हैं।' यमराज सोचने लगे—एक बार राम-नाम-स्मरणका फल क्या होता है? यह तो मैं भी नहीं जानता। देवर्षि नारदजी परम भक्त हैं। उन्हींसे इस शंकाका समाधान कराना चाहिये। धर्मराजने देवर्षि नारदजीका स्मरण किया—

'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥'

इस प्रकार सुमधुर संकीर्तन करते, वीणा बजाते देवर्षि नारदजी पधारे। सादर अभिवादनके पश्चात् धर्मराजने देवर्षिसे पूछा—

'देवर्षि! केवल एक बार भगवन्नाम-स्मरणका फल बतानेकी कृपा करें।'

देवर्षि बोले—'भाई! मैं तो रात-दिन हरि-गुणगानमें मस्त रहता हूँ। एक बार राम-नाम लेनेका फल क्या होता है? यह तो मैं भी नहीं जानता। चलो जगत्पिता ब्रह्माजीसे हम सभी मिलकर पूछें।'

वह जीवात्मा, धर्मराज एवं देवर्षि तीनों ब्रह्माजीके पास ब्रह्मलोक पहुँचे। उनसे भी उपरोक्त प्रश्न किया गया।

ब्रह्माजी बोले—'भाइयो! मुझे सृष्टि-कार्यसे इतना अवकाश ही कहाँ प्राप्त होता है। केवल एक बार राम-नाम उच्चारणका कितना पुण्य होता है, सो मुझे भी मालूम नहीं है। चलो, हम सभी शंकरभगवान्‌से इस सम्बन्धमें पूछें। वे दिन-रात राम-नामका संकीर्तन किया करते हैं। उन्हें जरूर राम-नामकी महिमा मालूम होगी।' चारों मिलकर शंकरभगवान्‌के पास कैलास पहुँचे। उनसे प्रार्थना की गयी—'प्रभो! केवल एक बार भगवन्नाम-स्मरणजन्य फल क्या होता है? यह जाननेको हम सभी उत्सुक हैं।'

महेश्वर बोले—'समागत सज्जनो! यह बात तो मेरे लिये भी नयी है। इसका समाधान तो विष्णुभगवान् ही कर सकते हैं। सो चलो, वैकुण्ठलोक।' पाँचों मिलकर वैकुण्ठलोक पहुँचे। वही पुराना प्रश्न वैकुण्ठनाथ विष्णुभगवान्‌के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

विष्णुभगवान् मेघगम्भीर अमृतमयी वाणीमें बोले—'भोले भक्तो! जिस पुण्यके फलस्वरूप इस जीवात्माने देवर्षि नारदजी, जगत्पिता ब्रह्माजी एवं भगवान् शंकरके दर्शन किये एवं अबाध गतिसे दिव्यलोक वैकुण्ठतक चला आया, यह उस एक बार राम-नाम उच्चारणरूप पुण्यका ही फल है।' सभीकी जिज्ञासा दिव्य सुधामयी वाणी सुनकर शान्त हो गयी।

सो पाठको! जब एक बार राम-नाम लेनेका इतना दिव्य फल होता है। तब प्रेमपूर्वक अहर्निश हरि-संकीर्तनका फल क्या होता होगा? आप अनुमान कीजिये। आओ, हम सब मिलकर प्रातःस्मरणीय पूज्य गुरुदेव (श्रीहरिबाबाजी)-ने जिस नाम-गंगामें अवगाहन कराके असंख्य जीवोंका उद्धार किया, कराया और बाँध धामपर अखण्ड संकीर्तनद्वारा करा रहे हैं, उस महामन्त्रका प्रेमपूर्वक स्मरण करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

सेवा

(श्रीरूपचन्दजी शर्मा)

प्राणी चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद भगवत्कृपासे मनुष्य-जीवन प्राप्त करता है। शरीर और आत्माके मेलका नाम मनुष्य है। शरीर आत्माके उपयोगके लिये है और जीवका जगत्‌से सम्बन्ध शरीरके कारण ही है। शरीरकी शोभा आत्मासे है। यह आश्चर्यकी बात है कि हम दिन-रात शरीरके कार्य-व्यवहारमें तो जुटे रहते हैं और आत्म-उन्नतिको भूल जाते हैं। मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, यदि मिल गया तो यह प्रभु-प्राप्तिका सुअवसर है।

मनुष्यमें अपार शक्ति है। यह उसपर निर्भर करता है कि वह उसका उपयोग सांसारिक धन्धोंके लिये करता है या भगवत्प्राप्तिके लिये। अच्छी बात यह है कि वह भरण-पोषणके कार्य भी करे और पुण्यप्रद कार्य भी करता रहे। 'मैं-मेरा' और 'तू-तेरा' के भावका त्याग करे और सर्वात्मिक भावपर अपने मनको स्थिर करे।

सेवाका स्वरूप—सेवा-कर्म प्राणीके जन्म लेनेसे आरम्भ हो जाता है। माता नवजातकी तन, मन, धन और पदार्थोंसे सेवा करनेमें जुट जाती है। उसकी यह सेवा-भावना जीवनभर बनी रहती है। सन्तान अपने माता-पिता, बुजुर्गों, गुरुजनों, देवी-देवताओं आदिको नमन करती है। उनकी आज्ञाका पालन करती है। बड़े होकर मनुष्य अपने-अपने व्यवसायमें व्यस्त रहता है। कोई भी समर्थ व्यक्ति बेकार नहीं रहता। सारा विश्व मनुष्य, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु आदिसे भरा हुआ है और भगवान्‌का ही स्वरूप है—ऐसा मानकर यदि मनुष्य अपना-अपना कार्य करे और सबमें प्रभुका दर्शन करे तो उसकी यह कार्य-पद्धति प्रभुकी पूजा बन जायगी। यह भगवान्‌की उच्च कोटिकी सेवा है। भगवान् श्रीकृष्णजी कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६।३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

सेव्य कौन—सेवा किसकी करनी चाहिये? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जो जिज्ञासु व्यक्तिके मनमें उत्पन्न होता रहता है। माता-पिता, बन्धु-बान्धव, परिजन, गुरु, विद्वान्, वृद्ध लोग, निर्धन, दीन-दुखी, अनाथ, बीमार, अतिथि, विकलांग, शरणागत, पशु-पक्षी इत्यादि पोष्य वर्गके अन्तर्गत आते हैं। जो समर्थ है, सक्षम है और साधनसम्पन्न है, उसका यह कर्तव्य बनता है कि वह अपने सामर्थ्यसे दूसरेकी सेवा करे। यथा-अवसर सेवा-कार्य करे। प्रत्येक प्राणीको एक-दूसरेकी सहायताकी आवश्यकता रहती है। प्रकृति भी प्राणीका पोषण करती है।

सेवाके प्रकार—प्रभुतक पहुँचनेके लिये सेवा एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। सेवा करनेका अधिकार सभी लोगोंको प्राप्त है। देवता और प्रकृति भी इससे वंचित नहीं। सूर्य अपने प्रकाश और ऊष्मासे, चन्द्रमा अपनी चाँदनीसे, नदियाँ जलसे, वृक्ष अपने फलों और छायासे, पृथ्वी अन्नसे, वायु जीवन प्रदान करनेसे, बादल वर्षासे सबकी सेवा करते हैं। पशु-पक्षी भी मानवकी सेवा करते हैं। मनुष्य चार प्रकारसे सेवा कर सकता है—

१-तनसे सेवा—शरीरद्वारा माता-पिता, बीमार, वृद्ध, असमर्थ व्यक्तिको अपनी शारीरिक सेवा प्रदान करके उन्हें सुख पहुँचाना, भूखेको अन्न, प्यासेको पानी, निरक्षरको पढ़ाना, रक्तदान करना, मरणासन्नको गीता-रामायण और भगवन्नाम सुनाना इत्यादि तनकी सेवाके अन्दर आते हैं। वास्तवमें मानव-देह सेवा, परोपकार और भक्तिके लिये ही भगवत्कृपासे प्राप्त हुई है, भोग-विलासके लिये नहीं।

२-धनसे सेवा—धन नश्वर है। जीवनके लिये इसका कमाना भी आवश्यक है। सामर्थ्यके अनुसार

इसका उपयोग देवालय, धर्मशाला, अनाथालय, चिकित्सालय, छायादार और फलदार वृक्ष लगाना, रास्ता बनवाना, गोशाला बनाना, यथास्थान पेयजल सुविधाका प्रबन्ध करना इत्यादि जनहितके कार्योंमें धन लगाना ही धनका सही उपयोग है। धनदानके कई रूप हैं—जैसे अन्नदान, जलदान, भूमिदान, ग्रह-पीड़ा-निवारणदान, पंचबलिदान, विद्यादान इत्यादि। किसी निर्धन, बीमार, अपंग और असहाय व्यक्तिको आर्थिक सहायता करना धनसेवामें आता है।

३-वाणीसे सेवा—सन्त कबीरने कहा है—

ऐसी बानी बोलिये मनका आपा खोय।
औरन को सीतल करे आपहु सीतल होय॥

मनुष्यको कभी भी ऐसी वाणीका प्रयोग नहीं करना चाहिये, जिससे सुननेवालेके मनमें क्षोभ उत्पन्न हो जाय और चोट पहुँचे। किसीकी निन्दा तो करे ही नहीं। शान्त भावसे सत्य बोलना, मधुर और प्रिय बोलना, जिससे सुननेवालोंको सुख मिले और मन प्रसन्न हो जाय—वाणीकी सेवामें परिगणित होता है।

४-मानसिक सेवा—सबका हित-चिन्तन करना, दूसरे जीवोंके प्रति सद्भाव रखना, दूसरेके मनको प्रसन्न रखना, मन और इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखना, मौन रहकर लोकहितका चिन्तन करना इत्यादि मानसिक भावनात्मक सेवा है। दुखी प्राणियोंके कष्ट-निवारणकी प्रार्थनाका भाव शास्त्रमें इस प्रकार किया गया है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

सभी प्राणी सुखी हों, सभी स्वस्थ हों, सभीका मंगल हो, सबका कल्याण हो और कोई भी दुःखका भागी न बने।

दया—किसी भी प्राणीको जब हम असहाय, अपंग, रुग्ण, निराश्रित, असहाय, धनहीन, भयभीत आदि स्थितिमें देखते हैं, तो द्रवित हो जाते हैं। ऐसा प्राणी चाहे किसी भी जाति, कुल, वंश, पक्ष, देश, वर्ग आदिका हो, वास्तवमें वह दयाका पात्र होता है। उस प्राणीकी यथास्थिति तन, मन, धन, अन्न, जल, सान्त्वना, सदुपदेश, उपलब्ध पदार्थोंसे सहानुभूतिपूर्वक सेवा-भावसे सहायता करनी चाहिये। निष्ठापूर्वक निःस्वार्थभावसे की गयी सेवासे चित्तको आनन्दकी प्राप्ति होती है। ऐसा कर्म सेवकके पुण्यकर्ममें जुड़ जाता है और प्रारब्ध बनकर फलीभूत होता है।

परम सेवा—'सेवा' शब्दका अर्थ व्यापक है। मनुष्य जो भी कर्म करता है, उसमें यदि उसकी भावना भगवन्मय हो कि यह कार्य भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये हो रहा है, तो निश्चितरूपसे वह कर्म भगवान्‌की पूजा हो जायगा। भगवान् सब पदार्थोंमें, प्राणियोंमें सर्वत्र व्यापक है। कर्मके करनेमें जिसकी जैसी भावना होती है, उसका परिणाम वैसा ही होता है। सेवामें भी प्राणिमात्रको भगवान्‌का स्वरूप मानकर की गयी सेवा परम सेवा है।

इन्द्रियोंको वशमें कैसे करें ?

उत्थितानुत्थितानेतानिन्द्रियाहीन् पुनः पुनः।
हन्याद्विवेकदण्डेन वज्रेणेव हरिर्गिरीन्॥

(योगवासिष्ठ)

जैसे इन्द्रने वज्रके द्वारा उड़नेवाले पर्वतोंके पंख काट डाले थे, उसी प्रकार बारम्बार विषयोंकी ओर जानेवाले एवं कभी क्षणभरके लिये शान्त हो जानेवाले इन इन्द्रियरूपी सर्पोंपर विवेकरूपी डण्डेसे प्रहारकर इन्हें अपने वशमें करना चाहिये।

वृद्धजनोंहेतु सुखसे जीनेकी कला

(श्रीमनराखन लालजी शर्मा)

वृद्धजन अधिकांश मामलोंमें अपनी दुर्दशाके लिये स्वयं ही उत्तरदायी हैं। वस्तुत: उनके सुखसे जीनेकी भी एक सरल-सुगम कला है, जिसके न जाननेके कारण ही उन्हें अपने परिवारमें उपेक्षा—उत्पीड़न सहन करना पड़ता है। अत: वे इस कलाके द्वारा अपने स्वभाव-व्यवहारमें परिवर्तन करके अपनी वृद्धावस्थाके कष्टोंको बहुत कुछ दूर कर सकते हैं। उन्हें यह पक्का विश्वास रखना चाहिये कि मानसके अटल सिद्धान्त—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

—के अनुसार उनके दु:ख-सुख उनके कर्मोंके ही फल हैं। उनके बच्चे तो उनके दु:ख-सुखमें निमित्त बनकर पाप-पुण्यके भागी बन जाते हैं। तो आइये, हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें कि वृद्धजनोंको सुख-शान्तिमय जीवन जीनेके लिये इस कलाका उपयोग कैसे करना चाहिये।

वृद्धजन क्या करें?

१-वे अपने पुत्रों-बहुओं, पौत्र-पौत्रियोंको पूरा प्रेम दें। उनके अवगुणोंके साथ भी ताल-मेल करते हुए उनके विकारोंको यथासम्भव दूर करनेका प्रयास करें, क्योंकि कोई भी सर्वगुणसम्पन्न नहीं है। वृद्धजनोंके प्रेमपूर्ण सद्व्यवहारसे उनकी अपनी कमियाँ भी ढक जायँगी और उनके रूखे व्यवहारसे उनके सद्गुणोंपर भी पानी फिर जायगा। इस आयुमें सबको सहारेकी आवश्यकता होती है और उनका सच्चा सहारा उनके बच्चे-बहुएँ ही हो सकते हैं, अन्य कोई या वृद्धाश्रम नहीं। वृद्धाश्रम तो एक प्रतिशत दुर्दशाग्रस्त वृद्धजनोंके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं।

२-यदि वृद्धजन समझते हैं कि बच्चोंद्वारा उनकी उपेक्षा हो रही है, जिससे उन्हें कष्ट है तो वे उन कष्टोंको चुपचाप सहन करें और बच्चोंसे कुछ भी न कहें। वृद्धजनोंकी चुप्पी बच्चोंके सुधारका आधार बनेगी।

३-मौन रहनेका अभ्यास करें, परिवारमें रहते हुए भी अपने रहनेका स्थान अलग बनायें। वृद्धजन जितना कम बोलेंगे, उतने ही अधिक सुख-शान्तिका अनुभव करेंगे।

४-वृद्धजनोंकी समस्याका एक प्रमुख कारण मातृपीठके कमजोर होनेसे संयुक्त परिवारका बिखर जाना भी है। अत: उसे पुन: जोड़नेका प्रयास करें, जिसमें महिलाओंकी भूमिका अग्रणी होनी चाहिये।

५-अपनी जिम्मेदारी बच्चोंको सौंप दें और अपने जीवनकालमें ही अपनी सम्पत्तिकी ऐसी व्यवस्था कर दें कि उनकी मृत्युके बाद बच्चोंमें तत्सम्बन्धी कोई विवाद पैदा न हो, परंतु वृद्धावस्थाके लिये कुछ धन अपने पास अवश्य रखें। अपनी आवश्यकताएँ यथासम्भव सीमित कर लें। वे अपनी वृद्धा धर्मपत्नीकी सुख-सुविधाकी भी पूरी चिन्ता करें तथा उनके हाथमें भी पेंशन-जैसी रकम होनी चाहिये, जिसे वे अपने मनसे खर्च कर सकें।

६-अपनी प्रिय पुत्रियोंके प्रति अपने पावन कर्तव्यके निर्वहनके लिये भी कुछ धन अपने पास रखें, ताकि उन्हें समय-समयपर अपने पास बुलाने तथा उनके यहाँ भात आदिके अवसरोंपर उनकी सामाजिक स्थितिके अनुरूप अपने इच्छानुसार उन्हें कुछ दे सकें। अपने जीवनकालमें यह जिम्मेदारी पुत्रोंको न सौंपें। अनेक मामलोंमें पुत्रियाँ भी अपने असहाय माता-पिताका कारगर सहारा बनी हैं। कुछका तो ऐसा मानना भी है कि लड़का तो तभीतक अपना है, जबतक उसकी शादी नहीं होती, लेकिन लड़की तो ताउम्र अपनी रहती है।

७-वृद्धावस्था उतनी शारीरिक दशा नहीं है, जितनी मानसिक है। अत: वृद्धावस्थामें भी वे अपनेको युवकों- जैसा अनुभव करनेके लिये उनके जैसा साहस, शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, प्रसन्नता बनाये रखें। अपने शरीर तथा वस्त्रोंको सदैव स्वच्छ रखें और अपना काम यथासम्भव स्वयं करें।

८-मस्त रहें, व्यस्त रहें, स्वस्थ रहें। वृद्धावस्थामें रोगमुक्त रहनेके लिये उचित दिनचर्या तथा आहार-

विहार अपनायें। आध्यात्मिकताकी ओर झुकें तथा स्वाध्याय, सत्संग, कथा-श्रवण एवं भगवद्भजनमें व्यस्त रहें। अपनी परिधि बढ़ायें और दृष्टिको विस्तारित करें। साथ ही अपने अनुभवसे परिवार और समाजको लाभान्वित करें। समाजसेवाका कोई-न-कोई काम अवश्य करते रहें। सदैव राग-द्वेषसे रहित, चिन्ता-तनावमुक्त और मस्त रहें। ऐसा करनेसे वे स्वस्थ रहेंगे और परिवारसे शारीरिक सेवा लेनेसे बचेंगे।

९-बच्चोंकी मानसिकताका पूरा ध्यान रखें। उनके काममें सहयोग करें तथा पेंशन, ब्याज अथवा अंशकालिक कार्यद्वारा अर्जित धनसे उनकी यथासम्भव सहायता भी करें। उन्हें ऐसा अनुभव न होने दें कि वे उनके लिये भार हैं। उनका बर्ताव ऐसा हो, जिससे परिवार और समाजको उनकी जरूरत महसूस हो।

१०-अपना एकाकीपन दूर करनेके लिये अपने आयुवर्गके बन्धुओंके साथ किसी मन्दिर, पार्क आदि सार्वजनिक स्थानपर नित्य बैठकर परस्पर वार्तालाप करके एक-दूसरेके दु:ख-सुखको बाँटकर अपने मनको हलका करें। साथ ही किसी बन्धुकी कोई समस्या होनेपर मिलकर उसका समाधान खोजें और उसे दूर करनेका प्रयास करें।

११-वृद्धोंकी समस्याओंका मुख्य कारण उनके ही बच्चे-बहुएँ होती हैं, जो संस्कारहीनता तथा पाश्चात्त्य संस्कृतिके प्रभावसे उनकी उपेक्षा करते हैं। अत: अपने पुत्र-पुत्रियोंको सुसंस्कारित बनाना भी उनका मुख्य कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है। संस्कार जन्म-जन्मान्तर निरन्तर चलनेवाली प्रक्रिया है। अत: बच्चोंको जन्मसे ही संस्कार देना प्रारम्भ करें। इस कार्यको अपने परिवारमें करनेके साथ-साथ राष्ट्रके स्तरपर भी एक आन्दोलनके रूपमें चलाना होगा।

रामनामके गायक—गोस्वामी तुलसीदास

(प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत)

गोस्वामी तुलसीदासजीकी विनय-पत्रिका भक्तिरसके नाना स्वादोंसे भरी हुई है। हिन्दी-साहित्यमें यह अनमोल रत्न है। श्रीरामचरितमानसकी लोकप्रियताके विषयमें अनेक प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं। इसका नाम लेते ही गोस्वामी तुलसीदासजी और गोस्वामीजीका स्मरण करते ही श्रीरामचरितमानस हठात् आँखोंके सामने आ जाता है, किंतु गोस्वामीजीका सम्बन्ध वस्तुत: श्रीरामचरितमानसतक ही सीमित नहीं है। गोस्वामीजी परम भक्त थे। जो कुछ उन्होंने कहा, वह सब उनका अनुभवसिद्ध कथन है। विनय-पत्रिका तो उनके सिद्धान्तोंका सारस्वरूप ही है। इसमें समस्त शास्त्रों, उपनिषदों और सिद्धान्तोंका निचोड़ मिलता है। काव्यका उत्कृष्ट चमत्कार इस ग्रन्थमें नि:सन्देह पाया जाता है। विनय-पत्रिकामें भक्तिरसका जैसा पूर्ण परिपाक देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं।

आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लने लिखा है कि 'सूर और तुलसीको हमें उपदेशकके रूपमें न देखना चाहिये। ये उपदेशक नहीं हैं, अपनी भावुकता और प्रतिभाके बलसे लोकादर्शकी मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित करनेवाले हैं। हमारा प्राचीन भक्ति-मार्ग उपदेशकोंकी सृष्टि करनेवाला नहीं है। सदाचार और ब्रह्मज्ञानके रूखे उपदेशोंद्वारा इसके प्रचारकी व्यवस्था नहीं है। न हमारे राम और कृष्ण उपदेशक, न उनके भक्त तुलसी और सूर। लोक-व्यवहारमें मग्न होकर जो मंगल ज्योति इन अवतारोंने उसके भीतर जगायी, उसके माधुर्यका अनेक रूपोंमें साक्षात्कार करके मुग्ध होना और मुग्ध करना ही इन भक्तोंका प्रधान व्यवसाय है। उनका शस्त्र भी मानव-हृदय है और लक्ष्य भी। उपदेशोंका ग्रहण ऊपर-ही-ऊपरसे होता है। न वे हृदयके मर्मको ही भेद सकते हैं, न बुद्धिकी कसौटीपर ही स्थिर भावसे जमे रह सकते हैं। उपदेश, वाद या तर्क गोस्वामीजीके अनुसार 'वाक्यज्ञान' मात्र कराते हैं, जिससे जीव-कल्याणका लक्ष्य पूरा नहीं

होता।' 'वाक्य-ज्ञान' और बात है, अनुभूति और बात। इसीसे प्राचीन परम्पराके भक्त लोग उपदेश, वाद या तर्ककी अपेक्षा चरित्र-श्रवण और चरित्र-कीर्तन आदिका ही नाम लिया करते हैं। अनन्त शक्ति-सौन्दर्य-समन्वित अनन्त शीलकी प्रतिष्ठा करके गोस्वामीजीको पूर्ण आशा होती है कि उसका आभास पाकर जो पूरी मनुष्यताको पहुँचा हुआ हृदय होगा, वह अवश्य ही द्रवीभूत होगा। इसी हृदय-पद्धतिद्वारा ही मनुष्यमें शील और सदाचारका स्थायी संस्कार जम सकता है, दूसरी कोई पद्धति है ही नहीं। चरम महत्त्वके इस भव्य मनुष्य-ग्राह्य रूपके सम्मुख भाव-विह्वल भक्त-हृदयके बीच जो-जो भाव-तरंगें उठती हैं, उन्हींकी माला यह विनय-पत्रिका है।

विनय-पत्रिकाके सारे पद गानेयोग्य हैं। वे विभिन्न रागोंमें गाये जाते हैं। कौन पद किस राग-रागिनीमें गाया जा सकता है, इसका पूरा विचार रखा गया है। विशेष बात यह है कि जिस रागके उपयुक्त जो पद रखा गया है, उसका भाव भी उसी रागके अनुरूप है।

प्रस्तुत आलेखमें हम विनय-पत्रिकाके १३० वें पदकी विवेचना करेंगे, जो राग रामकलीमें है—

राम राम, राम राम, राम राम, जपत।
मंगल-मुद उदित होत, कलि-मल-छल छपत॥
कहु के लहे फल रसाल, बबुर बीज बपत।
हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत॥
काल, करम, गुन, सुभाउ सबके सीस तपत।
राम-नाम-महिमाकी चरचा चले चपत॥
साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत।
कलिजुग बर बनिज बिपुल, नाम-नगर खपत॥
नाम सों प्रतीति-प्रीति हृदय सुथिर थपत।
पावन किये रावन-रिपु तुलसिहु-से अपत॥

(१—५)

यहाँ इस तथ्यको रेखांकित किया गया है कि राम-नामके स्मरणसे कल्याण और आनन्दका उदय होता है और कलियुगके पाप तथा छल-छिद्र (डरके मारे) छिप जाते हैं, सामना नहीं कर सकते। गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें कहा है कि कलियुग—कराल कालमें तो राम-नाम ही कल्पवृक्ष है, जो स्मरण करते ही संसारके सब जंजालोंका नाश कर देनेवाला है। कलियुगमें यह राम-नाम मनोवांछित फल देनेवाला है, परलोकका परम हितैषी और इस लोकका माता-पिता है। अर्थात् परलोकमें भगवान्‌का परमधाम देता है और इस लोकमें माता-पिताके समान सब प्रकारसे पालन और रक्षण करता है।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

(रा०च०मा० १।२७।५-६)

गोस्वामीजी लिखते हैं कि दुष्कर्म करके किसने सुख पाया? उत्तर है किसीने नहीं। वे प्रश्न करते हैं कि बबूलका बीज बोकर किसने आमके फल पाये? कर्म तो अपना फल अवश्य देता है और उसे कर्ताको भोगना ही पड़ता है, शास्त्रोंमें उल्लेख है—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

जब भरतजी श्रीरामजीसे मिलने चित्रकूट गये, तो देवराज इन्द्रको सोच हुआ कि कहीं प्रेमवश श्रीरामजी लौट न जायँ और हमारा बना-बनाया काम बिगड़ जाय। इन्द्र गुरु बृहस्पतिजीके पास गये और बोले कि हे प्रभो! वही उपाय कीजिये कि जिससे श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीकी भेंट ही न हो। देवगुरु बृहस्पतिजी इन्द्रसे बोले कि हे देवराज! मायाके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके सेवकके साथ कोई माया करता है, तो वह उलटकर अपने ही ऊपर आ पड़ती है। श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किये अपराधसे कभी रुष्ट नहीं होते। पर जो कोई उनके भक्तका अपराध करता है, वह श्रीरामकी क्रोधाग्निमें जल जाता है। हे देवराज! सुनो, श्रीरामजीने विश्वमें कर्मको ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वैसा ही वह फल भोगता है।

गोसाईंजीने सावधान किया है—'विषयोंमें फँसकर किसे ब्रह्मानन्द मिला? वृथा अनर्गल बातें बक-बककर मानव-जन्म यों ही नष्ट नहीं करना चाहिये। अपने

मनको सम्बोधित करते हुए गोस्वामीजीने एक स्थानपर लिखा है कि अरे मन! तू किसलिये बहुत-सारे उपाय करता-फिरता है? यों तेरे दु:ख तबतक दूर होनेवाले नहीं, जबतक तू रघुनाथजीसे विमुख है। भगवद्-विमुख कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे, परंतु उसके तीनों ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक) नष्ट नहीं हो सकते, यह बात मुनिश्रेष्ठ शुकदेवजीने भुजा उठाकर कही है—

काहे को फिरत मन, करत बहु जतन,
मिटै न दुख बिमुख रघुकुल-बीर।
कीजै जो कोटि उपाइ, त्रिबिध ताप न जाइ,
कह्यौ जो भुज उठाय, मुनिबर कीर॥

(विनय-पत्रिका १९६।१)

गोस्वामीजीकी यह दृढ़ मान्यता है कि काल, कर्म, गुण (सत्, रज और तम) तथा प्रकृति—ये सब सभीके सिरोंपर तप रहे हैं, सभीको दु:ख दे रहे हैं, किंतु राम-नामकी महिमा सुनते ही ये सब दब जाते हैं। श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें पक्षिराज गरुड़जीको रामकथा सुनाते हुए काकभुशुण्डिजी उपसंहारमें इस अटल सिद्धान्तका उद्घोष करते हैं कि 'जलको मथनेसे भले ही आपको घी प्राप्त हो जाय और बालूको पेरनेसे भले ही तेल निकल आये, परंतु श्रीहरिके भजन बिना संसाररूपी समुद्रसे नहीं तरा जा सकता। प्रभु मच्छरको ब्रह्मा कर सकते हैं और ब्रह्माको मच्छरसे भी तुच्छ बना सकते हैं। ऐसा विचारकर चतुर पुरुष सब सन्देह त्यागकर श्रीरामजीको ही भजते हैं। मैं आपसे भली-भाँति निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ—मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं हैं कि जो मनुष्य श्रीहरिका भजन करते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरको सहज ही पार कर जाते हैं।'

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

(रा०च०मा० ७।१२२ (क))

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रबीन॥

(रा०च०मा० ७।१२२ (ख))

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥

(रा०च०मा० ७।१२२ (ग))

गोस्वामीजीका मत है कि लोग बिना ही साधनोंके सिद्धियाँ लपक लेनेके लिये व्याकुल हैं, पर यह कब सम्भव है? हाँ, कलियुगका जितना कुछ बनिज-व्यापार और माल है, वह सब नाम-नगरमें खप जाता है। अर्थात् कलियुगमें किये सारे पाप राम-नामके प्रतापसे नष्ट हो जाते हैं।

नाममें विश्वास और प्रेम करनेसे हृदय शान्त-शीतल हो जाता है, सारी जलन बुझ जाती है; क्योंकि श्रीरघुनाथजीके नामसे रावण-सदृश शत्रु और तुलसी-सरीखे पतित जन भी पावन हो गये हैं।

प्रस्तुत पदमें 'राम' शब्द छ: बार आया है। इसका विशेष निहितार्थ है। श्रीबैजनाथजीने अपनी टीकामें इसके तीन कारण बताये हैं—

(१) **राम**—तारक मन्त्रमें ॐकारकी षट् मात्राएँ वर्तमान हैं, अत: 'प्रणव' राममें सन्निहित है, यह दर्शाया गया है।

(२) शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और मैथुन—इन छहों विषयोंका राम-नाम विनाशक है। अत: षट् बार स्मरण किया गया है।

(३) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छहों शत्रुओंपर विजय-लाभ करनेके लिये षट् बार स्मरण किया गया है। गोस्वामीजी इसीलिये राम-नामको कलियुगरूपी भवसागर पार करनेका एकमात्र आधार मानते हैं—

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥

(रा०च०मा० ७।१०३ (क)।४-५)

अर्थात् कलियुगमें तो केवल श्रीहरिगुण-गाथाओंका गान करनेसे ही मनुष्य भवसागरकी थाह पा जाते हैं। कलियुगमें न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान ही है। श्रीरामजीका गुणगान ही एकमात्र आधार है।

आरोग्य-चर्चा—

गण्डूष-क्रिया एवं कवल-क्रिया

(योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द')

आजकल दाँतोंके कष्टमें जब कोई डॉक्टरके पास जाता है, तो वे प्राय: सभीको रूट-कैनालको अनिवार्य कह देते हैं। जबकि प्राचीन शास्त्रोंमें गण्डूष-क्रिया या कवल-धारण एक ऐसी क्रिया लिखी है कि यदि इस क्रियाका प्रचार हो जाय तो शायद ही किसीको रूट-कैनाल कराना पड़े। इन क्रियाओंसे ९० प्रतिशत लोगोंको रूट-कैनालसे बचाया जा सकता है। जानिये कैसे—

गण्डूष—वास्तवमें गण्डूष संस्कृत शब्द है। मुँहमें सिर्फ सामान्य तैल, औषधि तैल, हर्बल काढ़ा या गोमूत्र या अन्य कोई भी औषधीय द्रव पदार्थको एक विशिष्ट समयके लिये मुँहमें भरना, इसीको गण्डूष कहते हैं। यह क्रिया दन्त-धावन (दाँतोंकी स्वच्छता)-के बाद किया जानेवाला दिनचर्याका एक उपक्रम है। गण्डूष उपक्रम (क्रिया)-में, मुँहमें धारण किये हुए द्रवको केवल भरना, किंतु इधर-उधर न घुमाना। जिससे यह द्रव मुखमें स्थित दाँत, जीभ, मसूड़े, तालु आदिके समान रूपसे सम्पर्कमें रहे। मुँहमें तबतक रोका जाता है, जबतक आँख एवं नाकसे पानी आना न शुरू हो जाय। किंतु यदि पानी आना न शुरू हो और पाँच-दस मिनट समय हो गया हो, तो भी आप मुँहका द्रव हटा सकते हैं। गण्डूष करनेके बाद गरम पानी या सामान्य पानी (ठंडा नहीं)-से कुल्ला करके मुँह साफ कर लेना चाहिये। गण्डूषको आवश्यकतानुसार दिनमें एक या दो अथवा तीन बार कष्टके अनुसार करें।

गण्डूष-क्रिया—यह दाँत, मसूड़े, जीभ, स्वादांकुर आदि मुँहके सभी विकारोंमें रामबाणकी तरह लाभ करती है। दन्तक्षय, दन्त झनझनाहट (Sensitive Teeth), पायरिया, मसूड़ोंका फूलना, दाँतोंका हिलना, मुँहमें अल्सर होना आदि रोगोंमें गण्डूष बहुत-बहुत लाभकारी है। इतना ही नहीं, इसके अपनानेसे सभी प्रकारके दाँतोंके रोग, जीभके रोग, गालोंके घाव एवं टांसिलसे तुरंत आशातीत छुटकारा मिलेगा। मेरा विश्वास है कि गण्डूष-क्रियासे १०० मेंसे ९० लोग रूट-कैनालसे बच सकते हैं। गण्डूष लेटकर नहीं करना चाहिये। गण्डूष या कवल-क्रियाको यदि नियमित किया जाय तो दाँत, जीभ और मुँहके विकार खोजनेसे भी नहीं मिलेंगे या नहीं होंगे। प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमी गण्डूष-क्रिया या कवल-क्रियाको साफ-स्वच्छ मिट्टी या मिट्टीके पेड़ेको मुँहमें भरकर कर सकते हैं।

कवल-क्रिया—उपर्युक्त द्रवोंको मुँहमें हिलाया जाय, तब उसे कवल-धारण कहा जाता है और न हिलानेको गण्डूष-क्रिया कहेंगे।

मुँह, दाँत, आन्तरिक गाल एवं टांसिलके कष्टसे निरोगी रहनेके लिये गण्डूष या कवल-धारणका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। जैसे भोजन करनेके बाद, जूस या दूध पीनेके बाद ठीक प्रकारके कुल्ला करना आवश्यक है। वैसे ही मुँह, गला, जीभ आदिके कष्टोंको दूर करनेके लिये गण्डूष या कवल धारण करना लाभकारी है। गण्डूष या कवल-क्रियाके चार प्रकार हैं—

१-स्निग्ध गण्डूष—जो मुँहमें चिकनाहट करे और दर्द या शोथ (सूजन) आदिमें लाभकारी हो, जैसे अरण्डीका तैल।

२-शमन गण्डूष—पित्तदोषमें लाभकारी है, जैसे ठण्डा पानी या चमेलीका तेल।

३-शोधन गण्डूष—कफदोषमें लाभकारी है, जैसे अदरकका काढ़ा या गरम पानी।

४-रोपण-गण्डूष—व्रण आदि भरनेका कार्य करता है जैसे नीमका तेल, गोमूत्र।

गण्डूष कब करें—प्रात: खाली पेट या रात्रि सोनेसे पूर्व या आवश्यकता पड़नेपर कभी भी कर सकते हैं।

गण्डूष धारण-विधि—कितनी देर (५-१०-१५-२०-३० मिनट) कितनी बार अधिकतम ३ बार, कम-से-कम २ बार अवश्य करें।

सरसोंका तेल—नियमित सरसोंके तेलका गण्डूष करनेसे मुखमें किसी भी प्रकारका रोग नहीं होता।

खदिरादि-तैलका गण्डूष—सभी रोगोंमें लाभकारी है। दर्दमें विशेषकर।

इरिमेदादि तैल—हिलते दाँत जम जाते हैं। नीमका तेल, अरण्डीका तेल, चमेलीका तेल, खदिरादि या इरिमेदादि तेल आयुर्वेदकी दूकानसे प्राप्त कर सकते हैं।

मुँहमें जलन हो तो—चमेली, त्रिफला या नीमके तैलका गण्डूष करें।

मुँहके रोगोंमें—देशी गायका गोमूत्रका गण्डूष या कवल-धारण अति लाभकारी है।

तीर्थ-दर्शन—

आदिशक्ति माँ महामाया देवीकी नगरी रतनपुर

(डॉ० श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा)

इतिहास साक्षी है कि आदिकालसे ही छत्तीसगढ़ अंचल विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियोंका एक प्रमुख केन्द्र-बिन्दु रहा है। समय-समयपर यहाँकी पावन एवं शस्य-श्यामला भूमिमें अनगिनत संस्कृतियोंका उद्भव, उत्कर्ष एवं पराभव हुआ है। उनकी अक्षुण्ण स्मृतिमें अनेक पूजा-उपासनागृह, धरोहर एवं कलाकृतियाँ आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं। विभिन्न संस्कृतियों एवं धार्मिक सम्प्रदायोंको पुष्पित, पल्लवित होनेके समान अवसर प्रदान किये जानेके कारण छत्तीसगढ़को धार्मिक सहिष्णुताका तीर्थस्थल कहा जाता है।

छत्तीसगढ़की राजधानी रायपुरसे १२५ किलोमीटरकी दूरीपर बिलासपुर स्थित है। बिलासपुर जिला मुख्यालयसे मात्र २५ किलोमीटरकी दूरीपर बिलासपुर-कोरबा मुख्यमार्गपर रतनपुर नगर पंचायत स्थित है। मन्दिरोंकी बड़ी संख्यामें मौजूदगीके कारण स्थानीय रूपसे रतनपुरको छोटी काशी भी कहा जाता है। यह स्थान दुल्हरा नदीके तटपर है। रतनपुर विभिन्न राजवंशोंके शासकोंद्वारा लाये गये अनेक विशाल ऐतिहासिक बदलावोंका साक्षी रहा है। यहाँ प्रवेश करते ही हैहय राजवंशके बाबा भैरवनाथ क्षेत्रपालसिंहकी एक नौ फुट लम्बी मूर्ति देखनेको मिलती है। यह स्थान दुल्हरा नदीके तटपर है। यहाँ अनेक ऐसे दर्शनीय स्थल विद्यमान हैं, जिनमें प्राचीन मन्दिरों, ऐतिहासिक पुरावशेषों तथा कलात्मक प्रतिमाओं एवं सरोवरोंका विशेष स्थान है।

वर्तमानमें रतनपुरकी प्रसिद्धि मुख्य रूपसे आदिशक्ति माँ महामाया देवीके प्राचीन मन्दिरके कारण ही है। इसे पूरे भारतवर्षमें फैले ५१ शक्तिपीठोंमेंसे एक माना जाता है, जो कि दिव्य मातृशक्तिका प्रतीक मन्दिर है। देवी महामायाको कोसलेश्वरीके नामसे भी जाना जाता है, जो कि पुराने दक्षिण कोसल क्षेत्र (वर्तमान छत्तीसगढ़)-की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। महामाया मन्दिर एक विशाल पानीकी टंकीके बगलमें उत्तरकी ओर मुख करके नागर शैलीकी वास्तुकलामें बनाया गया है। कोई भी सहायक मन्दिरों, गुम्बदों, महलों और किलोंको देख सकता है, जो कभी मन्दिर और रतनपुर साम्राज्यके शाही घरानेमें स्थित थे। त्रिपुरीके कलचुरियोंने रतनपुरको अपनी राजधानी बनाकर लम्बे समयतक छत्तीसगढ़ अंचलमें शासन किया था। इसे चतुर्युगी नगरी भी कहा जाता है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि इसका अस्तित्व चारों युगोंमें विद्यमान रहा है। जनश्रुतिके अनुसार रतनपुर चारों युगोंकी प्राचीन राजधानी थी। प्यारेलाल गुप्ता (प्राचीन छत्तीसगढ़, पृ० १४९)-के अनुसार महाभारतमें इसका उल्लेख 'रत्नावलीपुरी' नामसे किया गया है। सतयुगमें उसका नाम मणिपुर था, त्रेतायुगमें माणिकपुर, द्वापरयुगमें हीरापुर और कलियुगमें रतनपुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। कलचुरी वंशके राजा रत्नदेव प्रथमके समय रतनपुरको कुबेरपुरके नामसे भी जाना जाता था।

ऐसा कहा जाता है कि सन् १०४५ ई०-में राजा रत्नदेव प्रथम मणिपुर नामक गाँवमें शिकारके लिये आये थे। वे अपना रास्ता भूल गये थे। ऐसी

स्थितिमें उन्होंने एक वटवृक्षपर ही रात्रि-विश्राम करनेका निश्चय किया। अर्धरात्रिमें जब राजाकी आँखें खुलीं, तब उन्होंने वटवृक्षके नीचे अलौकिक प्रकाश देखा। वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये; क्योंकि वहाँ नीचे आदिशक्ति माँ महामाया देवीकी सभा लगी हुई है। राजा रत्नदेवको महामाया देवीजीका साक्षात् दर्शन हुआ। वे अपनी चेतना खो बैठे। सुबह होनेपर वे शीघ्रातिशीघ्र अपनी राजधानी तुम्मान खोल लौट गये और अपने मन्त्री तथा सलाहकारोंसे विचार-विमर्शकर उस मणिपुर नामक गाँवका नामकरण रत्नपुर या रतनपुर करके उसे ही अपनी राजधानी बनानेका निर्णय लिया।

महामाया देवीजीकी प्रेरणासे ही राजा रत्नदेवके द्वारा सन् १०५० ई०-में महामाया देवीका भव्य मन्दिर आदि निर्मित कराया गया। माँ महामाया रतनपुर शाखाके कलचुरी वंशके राजाओंकी कुलदेवी थीं। इस मन्दिरके भीतर महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी देवीकी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। यहाँ तीनों देवियाँ पूजनीय हैं। तीनों स्वरूपको एकीकृत करके माँ महामाया कहा जाता है। इन तीनों देवियोंकी पूजा माँ महामाया देवीके रूपमें की जाती है। गर्भगृहमें दो मूर्तियाँ स्थापित हैं। पहली मूर्ति आधी जमीनमें माँ महालक्ष्मीजी हैं, पृष्ठ भागमें माँ महासरस्वतीजी विराजमान हैं। मन्दिरके गर्भगृहमें महाकालीको अदृश्य माना गया है। दुर्गासप्तशतीके साथ ही देवीपुराणमें देवी महामायाके बारेमें जो कुछ लिखा गया है, ठीक उन्हीं रूपोंके दर्शन रतनपुरके महामाया मन्दिरमें होते हैं।

परिसरके भीतर ही कांतिदेवलका मन्दिर भी है, जो समूहका सबसे पुराना मन्दिर है और कहा जाता है कि इसे सन् १०३९ ई०-में सन्तोष गिरि नामक एक तपस्वीके द्वारा बनवाया गया था और बादमें पन्द्रहवीं शताब्दीमें कलचुरी राजा पृथ्वीदेव द्वितीयके द्वारा इसका विस्तार किया गया। इसके चार द्वार हैं, जिनमें सुन्दर नक्काशियाँ हैं। कालान्तरमें इसे भारतीय पुरातत्त्व विभागके द्वारा भी पुनर्स्थापित किया गया है। गर्भगृह और मण्डप एक आकर्षक प्रांगणके साथ किलेमें बन्द हैं, जिसे अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें मराठाकालमें बनाया गया था।

माँ महामाया मन्दिर सोलह खम्भोंपर टिका हुआ है। मन्दिरके प्रवेशद्वारपर दो विशाल स्वरूपके गेटका निर्माण किया गया है। प्रथम द्वारमें सूर्यभगवान्की विशालकाय प्रतिमा एवं दूसरे द्वारमें भगवान् शिवकी प्रतिमा है। महामाया मन्दिर प्राचीन कालीन हस्तकलाओंके माध्यमसे बनाया गया है। मन्दिर-परिसरमें कल्चुरीकालीन प्राचीन मूर्तियाँ देखनेको मिलती हैं। मन्दिरके साथ-साथ इस स्थानपर तीन-चार तालाब, कुण्ड एवं मन्दिर भी हैं, जो कि पौराणिक मान्यताओंपर आधारित हैं। इस मन्दिरमें कल्चुरी शासनकालके अवशेष देखनेको मिलते हैं। इसके साथ ही इस मन्दिरपर पाषाणकालके भी कुछ अवशेष देखनेको मिलते हैं। इस मन्दिरकी दीवारोंपर सुन्दर मूर्तिकला देख सकते हैं, जो कि ग्यारहवीं सदीकी है।

ऐसी मान्यता है कि जब राजा दक्षके यज्ञका विध्वंस हुआ, तब सतीजी उस यज्ञमें अपना शरीर त्याग देती हैं। सतीकी मृत्युसे व्यथित भगवान् शिव उनके मृत शरीरको लेकर तांडव करते हुए ब्रह्माण्डमें भटकते रहे। उस समय माताके अंग जहाँ-जहाँ गिरे, वहीं शक्तिपीठ बन गये। रतनपुरमें जिस जगह महामाया देवी विराजमान हैं, वहाँ सतीका दाहिना कन्धा गिरा था। भगवान् शिवने स्वयं आविर्भूत होकर उसे कौमारी शक्तिपीठका नाम दिया था, जिसके कारण माँ महामायाके दर्शनसे कुँवारी कन्याओंको सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। नवरात्रिके दिनोंमें यहाँकी छटा दर्शनीय होती है। इस अवसरपर श्रद्धालुओंद्वारा यहाँ हजारोंकी संख्यामें मनोकामना ज्योति-कलश प्रज्वलित किये जाते हैं। छत्तीसगढ़की शान इस ऐतिहासिक धार्मिक स्थलका दर्शन करने एवं माँ महामायादेवीका आशीर्वाद लेनेके लिये लोग दूर-दूरसे आते हैं, साथ-ही-साथ यहाँके प्राकृतिक सौन्दर्यका आनन्द उठाते हैं।

आदिशक्ति माँ महामायादेवीके प्राचीन मन्दिरका संरक्षक कालभैरवजीको माना जाता है, जिनका मन्दिर राजमार्गपर मन्दिरके रास्तेपर ही स्थित है। यह एक लोकप्रिय धारणा है कि महामाया मन्दिर जानेवाले तीर्थयात्रियोंको भी अपनी तीर्थयात्रा पूरी करनेके लिये कालभैरवजीके मन्दिर जानेकी आवश्यकता होती है।

माँ महामायादेवी मन्दिरके आस-पास अनेक दर्शनीय स्थल हैं, जिन्हें श्रद्धालु, पर्यटक देखना पसन्द करते हैं। इनमें प्रमुख हैं—भैरवबाबा मन्दिर, सती चौरा, रतनपुर किला, बीस दुवरिया मन्दिर, बुद्धेश्वर महादेव मन्दिर, बादल महल, खूँटाघाट बाँध, कंठी देउल मंदिर, मल्ली मकरन्द, तुलजा भवानी मन्दिर, सिद्धि विनायक मन्दिर, लखनी देवी (एकवीरा) मन्दिर, खो खो बावली, पंचमुखी शिव मन्दिर, चण्डिका कुण्ड, जगन्नाथ मन्दिर, राम टेकरी मन्दिर, हवा महल, गिरजावन हनुमान मन्दिर। रतनपुरमें कदम-कदमपर मन्दिर देखनेको मिलते हैं।

रतनपुरमें एक प्राचीन दुर्ग भी है, जो कि एक महत्त्वपूर्ण पर्यटन-स्थल है। यह दुर्ग अभी भी अच्छी स्थितिमें है और पर्यटक यहाँपर आकर इतिहासके बारेमें जानकारियाँ प्राप्त कर सकते हैं। यहाँका गणेश गेट काफी लुभावना है। गंगा-यमुना नदियोंकी मूर्तियोंके अलावा इस गेटपर एक प्राचीन पत्थरकी मूर्ति किलेके सबसे आकर्षक हिस्सेके रूपमें बनी हुई है। किलेमें प्रवेश करते ही ब्रह्मा, विष्णु, शिचोराय, जगन्नाथ मन्दिर और भगवान् शिवके ताण्डव नृत्यकी मूर्तियाँ हैं।

श्रद्धालु, पर्यटक रतनपुरके महामाया मन्दिरमें कभी भी जा सकते हैं। यहाँ प्रतिदिन हजारोंकी संख्यामें लोग पहुँचते हैं। दोनों ही नवरात्रोंके पावन अवसरपर रतनपुर जानेका सबसे अच्छा समय माना गया है। इस समय यहाँपर भव्य मेलेका आयोजन होता है। इस समय यहाँकी छटा देखने लायक होती है। इस अवसरपर श्रद्धालुओंके द्वारा यहाँ हजारोंकी संख्यामें मनोकामना ज्योति-कलश प्रज्वलित किये जाते हैं।

श्रीमहामायादेवी मन्दिरका प्रबन्धन एक ट्रस्टद्वारा किया जाता है, जिसमें इक्कीस प्रतिष्ठित ट्रस्टी शामिल हैं, जो मन्दिरके रख-रखाव, इसकी वास्तुकला, दिन-प्रतिदिनके प्रबन्धन, वित्त और प्रशासनके लिये जिम्मेदार होते हैं। यह ट्रस्ट नियमित रूपसे समाजके निर्धन एवं दिव्यांग लोगोंके हितमें विभिन्न प्रकारकी सामाजिक गतिविधियोंका आयोजन भी करता है।

माँ महामाया देवीके मन्दिरमें दर्शनका समय प्रतिदिन सुबह ६.०० बजेसे रात्रि ८.३० बजेतक रहता है। दोपहर १२.०० बजे आधे घंटेका भोग (दोपहरका भोजन अवकाश) रखा जाता है। इस दौरान मन्दिरमें प्रवेश प्रतिबन्धित रहता है। सामान्य दिनोंमें कोई भी व्यक्ति मन्दिरके अन्दर जा सकता है और लगभग आधे घण्टेमें ही दर्शनके बाद वापस आ सकता है। लेकिन नवरात्रके समयमें आनेवाले भक्तोंकी भारी संख्याके कारण दर्शन करनेमें थोड़ा ज्यादा समय लग सकता है। मन्दिरमें दर्शन सभीके लिये निःशुल्क है। नवरात्रके दौरान मन्दिर माताके दर्शनके लिये मध्यरात्रि १२.०० बजेतक खुला रहता है।

नवरात्र और दीपावलीमें मातारानीका विशेष राजसी शृंगार किया जाता है।

आवागमनकी दृष्टिसे रतनपुरका नजदीकी एयरपोर्ट छत्तीसगढ़ राज्यकी राजधानी रायपुरस्थित स्वामी विवेकानन्द एयरपोर्ट है, जहाँसे देशके सभी प्रमुख शहरोंके लिये हवाई जहाजकी सुविधा उपलब्ध है। यहाँसे माँ महामाया देवीकी नगरी रतनपुरकी दूरी लगभग १५० किलोमीटर है। रायपुरसे बस या कारसे रतनपुर आसानीसे पहुँचा जा सकता है। रतनपुरका सबसे नजदीकी रेलवे जंक्शन बिलासपुर है, जहाँसे महज २५ किलोमीटरकी दूरीपर रतनपुर स्थित है। रायपुर एवं बिलासपुर रेलवे जंक्शनसे देशके लगभग सभी प्रमुख शहरोंके लिये ट्रेन उपलब्ध है। रायपुर एवं बिलासपुरमें आवश्यकता और बजटके मुताबिक आसानीसे ठहरनेके स्थान मिल जाते हैं।

संत-चरित—

महाभागवत ज्योतिपंत

अठारहवीं शताब्दीमें महाराष्ट्रके सातारा जिलेके बिटे नामक गाँवमें गोपालपंत नामक एक गरीब ब्राह्मण रहते थे। गोपालपंत विद्वान् थे और पढ़ानेमें बड़े पटु थे। विद्यार्थियोंको पढ़ाकर वे जीवन-निर्वाह करते थे। गोपालके ज्योतिपंत नामका एक पुत्र था। पिताने बहुत प्रयत्न किया, बहुत समझाया और मारा-पीटा; पर बीस वर्षकी अवस्थातक ज्योतिपंतको राम-नाम लेना छोड़कर कोई विद्या नहीं आयी। गायत्री-मन्त्रतक उन्हें याद नहीं हुआ। विद्वान् पिताको बड़ा दुःख हुआ। मन्दबुद्धि पुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना उन्हें स्वीकार था। एक दिन क्रोधमें आकर उन्होंने पुत्रको घरसे निकाल दिया और कह दिया कि बिना विद्या पढ़े तुम कभी घरमें न आना।

घरसे निकाले जानेपर ज्योतिपंत अपने मित्रोंके पास पहुँचे। सब लड़कोंको लेकर वे वनमें गये। वहाँ एक गणेशजीका पुराना मन्दिर था। सरलहृदय ज्योतिपंतने कहा—'विद्याके दाता गणेशजी तो मिल गये। अब इनसे हम सारी विद्याएँ माँग लेंगे। ये दयामय क्या इतनी भी दया नहीं करेंगे?' सब लड़कोंसे उन्होंने वहीं बैठकर गणेशजीकी स्तुति करनेको कहा। लड़के थोड़ी देरमें ऊब गये। उन्हें भय हुआ कि देर होनेपर घरपर माता-पिता डाँटेंगे। वे सब घर लौटनेको तैयार हो गये। ज्योतिपंतने कहा—'भाई! तुमलोग भी यहाँ रहते तो तुम्हारा ही लाभ था। मैं तो जबतक स्वयं गणेशजी दर्शन न देंगे, तबतक यहाँसे नहीं हटूँगा। तुमलोगोंको जाना ही हो तो मन्दिरका दरवाजा बन्द करके उसे चूने-मिट्टीसे लीप दो, जिसमें कोई बाहरका आदमी मुझे न देखे। गाँवमें मेरे विषयमें किसीसे कुछ कहना मत।' लड़कोंने इसे भी एक खेल समझा। ज्योतिपंत मन्दिरमें रह गये। द्वार बन्द करके लड़कोंने चूने-मिट्टीसे उसे भलीभाँति लीप दिया और सब घर लौट गये।

ज्योतिपंतकी माताको जब पता लगा कि मेरे पुत्रको पतिदेवने घरसे निकाल दिया है, तब वे बहुत दुखी हुईं। 'पता नहीं लड़का कहाँ होगा। खाया-पीया भी नहीं, उसकी क्या दशा होगी!' आदि सोचकर वे रोने लगीं। क्रोध उतरनेपर गोपालपंतको भी पश्चात्ताप हुआ। वे पुत्रको खोजने निकले। जब ज्योतिपंतका कोई पता न लगा, तब माता-पिताके क्लेशका पार नहीं रहा। पुत्र-वियोगमें दिन-रात वे रोते रहते थे। घरमें चूल्हा नहीं जलता था। इस प्रकार छः दिन बीत गये। छठी रातको शिवजीने स्वप्नमें गोपालपंतको आश्वासन दिया—'लड़केके लिये चिन्ता मत करो। तुम्हारा पुत्र यशस्वी और भगवान्‌का भक्त होगा।'

मन्दिरमें बन्द ज्योतिपंत छः दिनोंतक गणेशजीकी प्रार्थना करते रहे। उन्हें भूख-प्यास या निद्राका भान ही नहीं हुआ। सातवें दिन चतुर्भुज गणेशजीने दर्शन देकर वरदान माँगनेको कहा। ज्योतिपंत बोले—'भगवन्! पहले तो मेरी विद्यालाभकी इच्छा थी, किंतु अब तो मैं केवल तत्त्वज्ञान और भगवान्‌की निष्काम प्रेमाभक्ति चाहता हूँ।'

श्रीगणेशजी बोले—'तुम्हारी पहली इच्छाके अनुसार विद्या तो तुम्हें अभी मिल जायगी, पर दूसरा मनोरथ कुछ दिनों बाद पूर्ण होगा। काशी जानेपर भगवान् व्यास तुम्हें दर्शन देंगे और उन्हींसे तुम्हें तत्त्वज्ञान और भक्ति प्राप्त होगी। कोई कार्य हो तो मुझे स्मरण करना। मैं आ जाऊँगा।' भगवान् गणेशजीने ज्योतिपंतकी जीभपर 'ॐ' लिख दिया और अदृश्य हो गये। ज्योतिपंतको तत्काल सभी विद्याएँ प्राप्त हो गयीं। वहाँसे वे घर आये। माता-पिता तथा दूसरे लोगोंने सहसा उन्हें विद्वान् हुआ देखकर उनकी बातोंका विश्वास किया। जो लड़के जंगलसे लौट आये थे, वे अब पछताने लगे।

ज्योतिपंतके मामा महीपति पूनामें पेशवाके प्रधान कार्यकर्ता थे। माताने लड़केको काम सीखनेके लिये मामाके पास भेज दिया। धनी लोग गरीब सम्बन्धियोंकी

उपेक्षा ही करते हैं। मामाने चार रुपये महीनेकी नौकरीपर ज्योतिपंतको रख लिया। दफ्तरमें हिसाब-किताबका काम बहुत बाकी पड़ा था। पेशवाने तीन दिनोंमें सब बहीखाते ठीक करनेका कड़ा आदेश दे दिया था। काम इतना था कि दफ्तरके सब कर्मचारी मिलकर भी एक महीनेसे कम समयमें उसे पूरा नहीं कर सकते थे। पेशवाकी आज्ञापर बोलनेका किसीको साहस नहीं था। महीपति बड़े चिन्तित थे। ज्योतिपंतने उनसे कहा— 'मामाजी! यदि आप मेरी बात मानें तो तीन दिनोंमें सब बहीखाते ठीक हो जायँगे। एक एकान्त कमरेमें आप बहीखाते, कागज, कलम-दावात, बैठनेके लिये गद्दा-तकिया, रोशनी और शुद्ध जल तथा फलाहार रखकर कमरा बन्द कर दें। मैं जबतक न कहूँ, द्वार न खोलें। मैं तीन दिनोंमें सब काम पूरा कर दूँगा।'

लोगोंने इस बातपर बड़ा मजाक किया, किंतु ज्योतिपंतकी दृढ़ता देखकर चिन्तातुर महीपतिने सब व्यवस्था कर दी। कमरेका द्वार बन्द हो जानेपर ज्योतिपंतने भगवान् श्रीगणेशजीका पूजन करके उनका स्मरण किया। भगवान् गणपति तुरंत प्रकट हो गये। ज्योतिपंतने कठिनाई बतायी। हाथमें कलम लेकर वे भवानीनन्दन स्वयं लिखने बैठ गये। तीन दिनोंमें समस्त बहीखाते ठीक-ठीक लिखकर वे अन्तर्धान हो गये।

लोगोंने महीपतिको समझाया—'अनुभवहीन बालकपर विश्वास करना ठीक नहीं हुआ। वह भूख-प्यासके मारे मर गया तो पाप होगा। आपकी बहन दुखी होकर आपको शाप देगी।' महीपतिको भी बात जँच गयी। तीसरे दिन वे द्वार खोलने जा रहे थे कि भीतरसे ज्योतिपंतने पुकारा। द्वार खुलनेपर सब लोग दंग रह गये। सारा बहीखाता पूर्णरूपसे लिखकर तैयार रखा था।

पेशवाको अनुमान नहीं था कि काम इतना अधिक है। जब बहीखाते उनके सामने दरबारमें आये, तब उन्हें आश्चर्य हुआ कि इतना काम तीन दिनोंमें हुआ कैसे! अक्षर इतने सुन्दर थे, जिनकी कोई तुलना ही नहीं। उन्होंने काम करनेवालेको उपस्थित करनेकी आज्ञा दी। ज्योतिपंत पेशवाके सामने लाये गये। इन्होंने नम्रतापूर्वक अपना परिचय दिया और सब बातें सच-सच बता दीं कि किस प्रकार भगवान् गणेशजीने उनपर कृपा की। ज्योतिपंतपर श्रीगणेशजीकी कृपा समझकर पेशवा बड़े प्रसन्न हुए। अपने हाथसे राजकीय मुहर एवं अधिकारकी पोशाक देकर उन्हें पुरंदर किलेकी रक्षाका भार सौंप दिया।

अब ज्योतिपंतका सम्मान महीपतिसे भी बढ़ गया। पुरंदर किलेमें ही ज्योतिपंतने अपने माता-पिताको भी बुला लिया। उत्तरी भारतपर पठानोंके आक्रमणके समय जब पेशवाने सेना लेकर उनका सामना किया, तब ज्योतिपंत भी उनके साथ थे। एक रात स्वप्नमें ज्योतिपंतको आदेश हुआ—'अब तुम्हें भगवान्‌की विशेष दया प्राप्त होगी। तुम काशी जाओ।' प्रातःकाल ही उन्होंने पेशवाकी नौकरीसे सदाके लिये छुट्टी ले ली। अपनी सम्पत्ति गरीबोंको बाँट दी और एक ब्राह्मणको साथ लेकर वे काशीको चल पड़े।

काशी आकर ज्योतिपंत मणिकर्णिकाघाटपर दोपहरतक गंगाजीमें कमरभर जलमें खड़े-खड़े मन्त्रजप करते। इसके बाद मधुकरी माँगकर ले आते और भगवान्‌को अर्पण करके पा लेते। छः महीने यह क्रम निर्विघ्न चला। छः महीने बीतनेपर एक दिन ज्योतिपंत गंगाजीमें खड़े-खड़े जप कर रहे थे कि एक म्लेच्छने आकर उनपर पानीके छींटे डाल दिये। वे स्नान करके फिर जप करने लगे। ज्योतिपंतने कुछ आवेशसे कहा— 'किसीके अनुष्ठानमें इस प्रकार बाधा डालना उचित नहीं।' म्लेच्छ यह सुनकर हँसने लगा। ज्योतिपंतने आश्चर्यसे देखा कि वह भगवान् व्यासके रूपमें बदल गया है। ज्योतिपंतने व्यासजीको प्रणाम किया। भगवान् व्यासने कहा—'तुम्हारा अनुष्ठान पूरा हो गया। आज रात तुम व्यास-मण्डपमें जाकर सो रहो। मैं वहाँ तुम्हें श्रीमद्भागवत दूँगा। उसके पारायणसे तुम्हें यथार्थ तत्त्वज्ञान तथा प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति होगी।' द्वादशाक्षर

मन्त्रके जपका उपदेश करके व्यासजी अन्तर्धान हो गये।

रातको ज्योतिपंत व्यास-मण्डपमें सोये। प्रात: उठनेपर सिरहाने श्रीमद्भागवतका पूरा ग्रन्थ उन्हें रखा हुआ मिला। अब वे प्रात: मणिकर्णिकामें स्नान करनेके पश्चात् व्यास-मण्डपमें बैठकर सायंकालतक भागवतका पारायण करने लगे। एक दिन भगवान् शंकर ब्राह्मणका वेश बनाकर सामने खड़े होकर उनका पारायण सुनने लगे। भोलेबाबाके प्रभावसे ज्योतिपंतकी जिह्वा लड़खड़ा गयी। उनसे अस्पष्ट उच्चारण होने लगा। विनोदपूर्वक विश्वनाथजीने कहा—'पण्डित! रोज ऐसे ही पारायण करते हो क्या?'

ज्योतिपंतने बूढ़ेबाबाको पहचान लिया। वे उनके चरणोंमें गिर पड़े। शंकरजीने कहा—'अब तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया। मेरी कृपासे तुम्हें तत्त्वज्ञान और प्रेमाभक्ति दोनोंकी प्राप्ति हो गयी। अब तुम लोगोंको भजनके मार्गमें लगाकर उनका कल्याण करो।'

काशीमें ज्योतिपंतकी 'वे तत्त्वदर्शी एवं परम भगवद्भक्त हैं' यह प्रख्याति हो गयी। विद्वानोंने श्रीमद्भागवतके साथ उनको सिंहासनपर बैठाकर उनकी सवारी निकाली और उन्हें महाभागवतकी उपाधि प्रदान की। इसके बाद वे महाराष्ट्र लौट आये। जीवनभर जगह-जगह घूमकर वे भक्तिका प्रचार करते रहे। उनके बनवाये अनेक मन्दिर हैं। सं० १८४५ वि०में मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशीको उन्होंने यह नश्वर संसार छोड़ा।

मराठीमें ज्योतिपंतजीकी भक्ति-ज्ञान-वैराग्यपरक बहुत-सी रचनाएँ हैं। उन्होंने ओवी छन्दमें पूरे श्रीमद्भागवतका अनुवाद भी किया था, पर वह अब मिलता नहीं।

वेशका सम्मान

एक बहुरूपियेने राजा भोजके दरबारमें आकर राजासे पाँच रुपयेके दानकी याचना की। राजाने कहा कि 'वे कलाकारको पुरस्कार दे सकते हैं, दान नहीं।' बहुरूपियेने स्वाँग-प्रदर्शनके लिये तीन दिनकी मोहलत माँगी।

अगले दिन राजधानीके बाहर टीलेपर एक जटा-जूटधारी तपस्वी समाधि-मुद्रामें शान्त बैठा दिखायी दिया। उत्सुकतावश चरवाहे वहाँ जुट गये। 'महाराज! आप कहाँसे पधारे?' उनमेंसे एकने प्रश्न किया। किंतु महाराजके कानोंमें मानो ये शब्द गये ही नहीं, वे मौन ही रहे। न तो उनके नेत्र खुले और न ही उनका शरीर रंचमात्र हिला।

'बाबा, क्या कुछ भिक्षा ग्रहण करोगे?' किंतु इसका भी उन्हें उत्तर न मिला। नगर लौटे चरवाहोंसे उस महान् तपस्वीका वर्णन सुनकर सभ्य नागरिकों, सेठों और दरबारियोंकी सवारियाँ नगरसे बाहरकी ओर दौड़ पड़ीं। फल, फूल, मेवा-मिष्टान्नके अम्बार लग गये, किंतु साधुने आँखें न खोलीं।

दूसरे दिन राजा भोजके प्रधानमन्त्रीने रुपये और रत्नोंकी राशियाँ चरणोंमें रखते हुए महात्मासे केवल एक बार नेत्र खोलकर कृतार्थ करनेकी प्रार्थना की, किंतु इसका भी उस साधुपर कोई असर नहीं हुआ।

तीसरे दिन राजा भोज स्वयं वहाँ आ पहुँचे। लाखों अशर्फियाँ चरणोंपर रख, वे साधुसे आशीर्वादकी प्रार्थना करते रहे, किंतु तपस्वी मौन ही रहे। चौथे दिन बहुरूपियेने दरबारमें उपस्थित हो अपने सफल स्वाँगके लिये पाँच रुपयेके पुरस्कारकी माँग की।

'मूर्ख! जब सारे राज्यका वैभव तेरे चरणोंपर रखा था, तब तो तूने एक बार भी आँख खोलकर देखा नहीं और अब मात्र पाँच रुपयेकी याचना कर रहा है।' राजाने कहा।

'उस समय सारे वैभव तुच्छ थे, महाराज!' बहुरूपियेने उत्तर दिया, 'तब मुझे वेशकी लाज रखनी थी, लेकिन अब कला अपना पुरस्कार चाहती है।'

गोमय कला और लोक मान्यताएँ

(डॉ० श्रीमती प्रेषिकाजी द्विवेदी)

लोक-कलाएँ भारतीय ग्रामीण अंचलके रचनात्मक पहलूको प्रदर्शित करनेका सशक्त माध्यम हैं। धार्मिक तथा लोक मान्यताओंसे जुड़ी गोमय कला सदैव पवित्र मानी गयी है। इस हेतु अनेक कथाओं, त्योहारों एवं रीति-रिवाजोंमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। गायके गोबरसे निर्मित साँझी उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान तथा गुजरातका प्रमुख उत्सव है, जिसमें गोबरकी सहायतासे कुँवारी कन्याएँ पितृपक्षके १६ दिन चित्रांकन करती हैं। इसी तरह दीपावली त्योहारके अन्नकूट महोत्सवपर कार्तिक शुक्ल पक्षमें श्रीगोवर्धनजीकी पूजा की जाती है और महिलाएँ द्वारपर गोबरसे गोवर्धन पर्वत एवं श्रीकृष्णका सुन्दर चित्रांकन करती हैं।

गोमय कलाका यही सौन्दर्य होलिका-दहनमें निर्मित उपलोंकी मालामें दिखायी देता है। इसी प्रकार गोबरसे निर्मित ढाल भाईकी रक्षाका प्रतीक माना गया है। दीपक, सूर्य, चन्द्रमा, तलवार, बर्तन इत्यादि बनानेका प्रचलन भी लोक-मान्यताओंमें मिलता है। गायके गोबरका कलात्मक प्रस्तुतीकरण लोक-कलामें सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है। वर्तमानमें गोबरसे निर्मित वस्तुएँ यथा—आभूषण, राखी, झूमर, मूर्तियाँ, गमले एवं नेमप्लेट सर्वाधिक चलनमें हैं। आज गोमय कला निश्चितरूपसे रचनात्मकताका विकसित रूप प्रदर्शित कर रही है। समाजके सभी वर्गोंमें गोमय कलाकी उपयोगिता प्रशंसनीय परिणाम दे रही है। भारतीय समाज विभिन्न जाति एवं जनजातीय संस्कृतिका मिश्रित स्वरूप है। यहाँके रीति-रिवाज, परम्पराएँ एवं मान्यताएँ इसे अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। समाज अपनी परम्परा, रहन-सहन, भाषा, कला इत्यादिसे परिपूर्ण होता है, यही परिवेश हमारी संस्कृतिका द्योतक है। लोक-कलाएँ मूलतः ग्राम्य अंचलोंद्वारा पोषित होती हैं। ग्राम्य परिवेश और संस्कृतिमें व्याप्त रचनात्मक व्यवहार, कला-तत्त्वके रूपमें परिणत हो लोक कलाको समृद्ध करते हैं। लोक कलाएँ उपयोगिताके भावके साथ ही प्रतीकरूपकी अहम् भूमिका होती हैं। विशेषतः त्योहार, मेले तथा अनुष्ठानोंमें मान्यताएँ तथा कलाएँ अन्तःसम्बन्धित होती हैं।

भारतीय सभ्यतामें गायको सदैव देवी (माता)-स्वरूप माना गया है। गायके पूजनसे लेकर, प्राप्त गोमय (गोबर)-को भी शुभकी संज्ञा दी गयी है। गायसे प्राप्त दूध, गोमूत्र एवं गोबरका विभिन्न उत्पादोंमें उपयोग किया जाता है। गायमें ३३ कोटि देवी-देवताओंका निवास है। पूजा, हवन अथवा अन्य धार्मिक कार्योंकी पवित्रता बनाये रखने हेतु गायके गोबरका विशेष महत्त्व है। गोबरसे बनाये जानेवाले विभिन्न प्रतीकात्मक स्वरूप लोक-कलाका अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। गोमय कला भारतीय जनमानसके कलात्मक एवं रचनात्मक आग्रहको वैश्विक स्तरपर भी परिपोषित कर रही है। व्रजकी लोक परम्परामें गोबरद्वारा चित्रित की जानेवाली साँझीने आज अन्तरराष्ट्रीय स्तरपर एक अलग पहचान स्थापित की है। साँझी उत्सवमें पितृपक्षके दौरान १६ दिनोंतक कुँवारी कन्याओंद्वारा गोमयसे भिन्न-भिन्न पारम्परिक प्रतीक चिह्न बनाये जाते हैं। उत्तरप्रदेशमें व्रज तथा राजस्थानमें नाथद्वारा मन्दिरकी साँझी-परम्परा विश्वप्रसिद्ध है। गोबरसे साँझीके चित्रांकनमें पेड़-पौधे, सूर्य, चन्द्र, पक्षी, स्वास्तिक, देवी-देवता, गणेशमुख, दीपक, गिरिराजधरण, त्रिशूल, जनेऊ, धनुष-बाण इत्यादि प्रतीक चिह्न बनाये जाते हैं। गोबरद्वारा बनाये जानेवाले यह चित्र फूलकी पंखुड़ियोंसे सजाकर आकर्षक रूपमें प्रस्तुत किये जाते हैं।

साँझीके मनोरथकी यह परम्परा कुँवारी कन्याओंसे सम्बन्धित है, जिसमें विवाहसे पूर्व वे पूरे उत्साहके साथ इस आयोजनमें प्रतिवर्ष सहभागिता करती हैं। विवाह होनेके उपरान्त विवाहके प्रथम वर्षमें ही साँझीका उद्यापन किया जाता है, जिसके अन्तर्गत साँझीका उद्यापन करनेवाली स्त्री १६ घरोंमें जाकर साँझी न्योतती है। तदुपरान्त अगले दिन नरवर कोटका पूजन करती है।

इस पूजनके उपरान्त स्त्रीद्वारा '**मनसा पूजी**' की सामग्री उसके ससुराल भेजी जाती है। साँझी लोककलाका यह मनोरम कार्य भारतीय संस्कारोंमें रचा-बसा है, जिसके अनेक स्वरूप तथा अनेक कथाएँ प्रचलनमें हैं। माना जाता है साँझा देवी दुर्गा स्वरूपिणी हैं। पूजनके समय गोबरसे साँझा देवी, उसकी बहन फूहड़ और खोड़ा काना बामणकी आकृतियाँ बनाते हैं। साथ ही गीत गाकर *'साँझा माई जीम ले, ना धापी तो और ले, धापगी तो छोड़ दे'* मीठे व्यंजनोंका भोग लगाया जाता है। इस प्रकार गोमयसे निर्मित साँझी कलामें लोक-कल्याण तथा खुशहाल जीवनकी भावनाएँ निहित हैं।

गोवर्धन-पूजन—सम्पूर्ण भारतमें दीपोत्सवके अगले दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदापर अन्नकूट-महोत्सव मनाये जानेकी परम्परा है। यह श्रीकृष्णके गोवर्धन स्वरूपके पूजनका उत्सव है। आजके दिन लोग अपने घरके द्वारपर गोबरसे श्रीकृष्णके गोवर्धनरूपका निर्माण करते हैं और विधि-विधानसे पूजा करते हैं।

मान्यता है कि बाल्यकालमें श्रीकृष्णने देवराज इन्द्रके अभिमानको खत्म करनेहेतु गोवर्धन पर्वतको अपनी उँगलीपर उठाकर अतिवृष्टिसे व्रजवासियों और गोवंशकी रक्षा की थी। कृष्णकी लीलाओंके मनमोहक रूप एवं कथाओंके फलस्वरूप यह धार्मिक मान्यता हमारे कलात्मक दृष्टिकोणको सुशोभित करती है। गोमयसे मुख्य द्वारपर गोवर्धन पर्वत, ग्वालबाल, पेड़-पौधोंके प्रतीक स्वरूपका चित्रांकनकर सुख तथा समृद्धिकी कामना की जाती है। अन्नकूट पर्वसे सम्बन्धित अन्य कथाओंमें प्रकृति तथा पुरुषके सम्बन्धका वर्णन तथा द्वारपर गोबरके प्रयोगसे घरमें सकारात्मक ऊर्जाके प्रवेशका वर्णन भी मिलता है।

फाल्गुन माहकी पूर्णिमापर होलिका-दहनका उत्सव उत्तर भारतमें हर्षोल्लासपूर्वक मनाया जाता है। होलिका उत्सवमें गोमयसे बने गोल आकृतिनुमा बड़कूले होलिका-पूजनमें प्रयोग किये जाते हैं। फाल्गुनमासके शुक्ल पक्षमें यह कार्य शुरू किया जाता है तथा एकादशीतक इसे पूर्ण कर लिया जाता है। इस दिन गोबरसे बनायी गयी ढाल होलिका माताको भेंट की जाती है, जो अपने भाईकी रक्षाका प्रतीक है। मान्यता है कि यह ढाल भाईपर वारकर (सिरके चारों ओर घुमाकर) होलिकामें अर्पित की जाती है। इससे भाई निरोग, दीर्घायु तथा समृद्ध रहते हैं।

गोबरकी यह ढाल, छोटे-छोटे बड़कूलोंके साथ एक मालामें पिरोकर होलिका-दहनसे पूर्व होलीपर पहनायी जाती है। इसी तरह मध्यप्रदेशमें परम्परा है कि गोबरसे बने यह बड़कूले होलिकामाताके गहने तथा आभूषण हैं, जिससे होलिकाका शृंगार होता है। गोबरके बड़कूले बनाते समय इससे खिलौने, बर्तन, दीपक, गोबरकी ढाल, नारियल, सुपारी, चन्द्रमा, सूरज, पान, तारे, चक्की, चूल्हा इत्यादि बनाकर भी होलिका-दहनमें अर्पित कर दिये जाते हैं। इसके अलावा गोमयसे ही होलिका माईकी आँख, आधी रोटी एवं तलवार बनाकर माताको भेंट की जाती है। माँडूमें होलीपर गोबरके बुलबुले बनानेकी परम्परा प्रचलित है। अलग-अलग रीति-रिवाज तथा लोक-मान्यतानुसार इन सभी प्रतीक-चिह्नोंको एक मालामें पिरोकर पितृदेवता, शीतला माता, हनुमान्‌जीको अर्पण किया जाता है। गोबरसे बनाये बड़कूले, उपले तथा प्रतीक चिह्नोंका दानकर परिवारमें सुख-सम्पत्तिकी प्रार्थना की जाती है और यह परम्परा बुराईपर अच्छाईका प्रतीक भी मानी जाती है।

गोमय कलाको मान्यतानुसार धरातलपर गोबर लीपकर माँड़नेका आधार बनाया जाता है, वहीं आज इससे कागज बनानेका प्रचलन भी शुरू हो गया है। माध्यमसे इतर बेल-बूटे, मूर्तियाँ, आभूषण, झूमर आज स्वतन्त्र रूपसे इस कलासे ही निर्मित किये जा रहे हैं। लोककलामें मौलिक तथा नैतिक शिक्षाके साथ ही कला-शिक्षाकी स्वत: ही परवरिश होती है और यह शिक्षा पाठ्यक्रमके रूपमें शुरू की जाय तो विद्यार्थियोंके सर्वांगीण विकासमें प्रशंसनीय परिणाम प्राप्त होंगे। लोक मान्यताओं तथा कलाओंके अन्तरसम्बन्धोंमें भारत एक समृद्ध देश है। यहाँ मान्यताएँ तथा रचनात्मक आग्रह दोनों समानान्तर ही अपने प्रगति-पथपर चलते हैं। अत: गोमय कला सरल तथा सहज अभिव्यक्तिके साथ ही कला क्षेत्रमें देशको सशक्त भी बनाती है।

श्राद्धसारसर्वस्व सप्तार्चिस्तोत्र अथवा पितृ-स्तुति

[पितरोंको प्रसन्न करनेवाला एक दिव्य स्तोत्र]

प्राचीन कालकी बात है। रुचि नामक एक सदाचारी महात्मा थे, जिन्होंने विरक्तिके कारण विवाह नहीं किया तथा सभी प्रकारकी आसक्तियोंको त्यागकर अनाश्रमी होकर रहने लगे। वे अपने पितरोंके प्रति अत्यन्त श्रद्धाके भाव रखते थे। यद्यपि वे त्याग-तपस्यापूर्ण संयमी जीवन व्यतीत कर रहे थे, तथापि उनके विवाह न करनेसे उनसे स्नेह एवं आशा रखनेवाले पितर कुछ निराश थे। उन्होंने प्रकट होकर उन्हें विभिन्न युक्तियों एवं तर्कोंके द्वारा गृहस्थ-आश्रमके महत्त्वको समझाया तथा खिन्न मनसे अदृश्य हो गये।

पितरोंकी अभिलाषाके अनुसार महात्मा रुचिने विवाह आदिकी कामनासे ब्रह्माजीकी तप:पूर्ण आराधना की। लोकपितामह ब्रह्माने प्रसन्न होकर उन्हें पुन: पितरोंकी शरणमें जानेका उपदेश दिया। तत्पश्चात् महात्मा रुचिने जिस स्तुतिके द्वारा पितरोंको सन्तुष्टकर

अभीष्ट फल प्राप्त किया, उसीको **श्राद्धसारसर्वस्व सप्तार्चिस्तोत्र** अथवा **पितृ-स्तुति** कहते हैं। मार्कण्डेय-पुराणमें इस स्तोत्रकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। इसका माहात्म्य बताते हुए पितरगण कहते हैं—

'जो मनुष्य इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक हमारी स्तुति करेगा, उसके ऊपर सन्तुष्ट होकर हमलोग उसे मनोवांछित भोग तथा उत्तम आत्मज्ञान प्रदान करेंगे। जो नीरोग शरीर, धन और पुत्र-पौत्र आदिकी इच्छा करता हो, वह सदा इस स्तोत्रसे हमलोगोंकी स्तुति करे। यह स्तोत्र हमलोगोंकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला है। जो श्राद्धमें भोजन करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके सामने खड़ा हो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके यहाँ स्तोत्रश्रवणके प्रेमसे हम निश्चय ही उपस्थित होंगे और हमारे लिये किया हुआ श्राद्ध भी नि:संदेह अक्षय होगा। श्राद्धमें इस स्तोत्रके पाठसे श्राद्धकर्ता हमारी तृप्ति करनेमें समर्थ होता है। हमें सुख देनेवाला यह स्तोत्र जहाँ श्राद्धमें पढ़ा जाता है, वहाँ हमलोगोंको बारह वर्षोंतक बनी रहनेवाली तृप्ति प्राप्त होती है। यह स्तोत्र हेमन्त-ऋतुमें श्राद्धके अवसरपर सुनानेसे हमें बारह वर्षोंके लिये तृप्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार शिशिर-ऋतुमें यह कल्याणमय स्तोत्र हमें चौबीस वर्षोंतक तृप्तिकारक होता है। वसन्त-ऋतुके श्राद्धमें सुनानेपर यह सोलह वर्षोंतक तृप्तिकारक होता है तथा ग्रीष्म-ऋतुमें पढ़े जानेपर भी यह उतने ही वर्षोंतक तृप्तिका साधक होता है। रुचे! वर्षा-ऋतुमें किया हुआ श्राद्ध यदि किसी अंगसे विकल हो तो भी इस स्तोत्रके पाठसे पूर्ण होता है और उस श्राद्धसे हमें अक्षय तृप्ति होती है। शरत्कालमें भी श्राद्धके अवसरपर यदि इसका पाठ हो तो यह हमें पन्द्रह वर्षोंतकके लिये तृप्ति प्रदान करता है। जिस घरमें यह स्तोत्र सदा लिखकर रखा जाता है, वहाँ श्राद्ध करनेपर हमारी निश्चय ही उपस्थिति होती है; अत: महाभाग! श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सामने तुम्हें यह स्तोत्र अवश्य सुनाना चाहिये; क्योंकि यह हमारी पुष्टि करनेवाला है।'

इसी स्तोत्रको श्रद्धालु पाठकोंके लिये यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम्।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम्॥
इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान् नमस्यामि कामदान्॥
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा।
तान् नमस्याम्यहं सर्वान् पितॄनप्सूदधावपि॥
नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥
देवर्षीणां जनितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान्।
अक्षय्यस्य सदा दातॄन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु।
स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरांस्तथा।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम्॥
अग्निरूपांस्तथैवान्यान् नमस्यामि पितॄनहम्।
अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः॥
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्तयः।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः।
नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः॥

[पितरोंकी स्तुति करते हुए] रुचि बोले—जो सबके द्वारा पूजित, अमूर्त, अत्यन्त तेजस्वी, ध्यानी तथा दिव्यदृष्टिसम्पन्न हैं, उन पितरोंको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो इन्द्र आदि देवताओं, दक्ष, मारीच, सप्तर्षियों तथा दूसरोंके भी नेता हैं, कामनाकी पूर्ति करनेवाले उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मनु आदि राजर्षियों, मुनीश्वरों तथा सूर्य और चन्द्रमाके भी नायक हैं, उन समस्त पितरोंको मैं जल और समुद्रमें भी नमस्कार करता हूँ। नक्षत्रों, ग्रहों, वायु, अग्नि, आकाश और द्युलोक तथा पृथ्वीके भी जो नेता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। जो देवर्षियोंके जन्मदाता, समस्त लोकोंद्वारा वन्दित तथा सदा अक्षय फलके दाता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण तथा योगेश्वरोंके रूपमें स्थित पितरोंको सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। सातों लोकोंमें स्थित सात पितृगणोंको नमस्कार है। मैं योगदृष्टिसम्पन्न स्वयम्भू ब्रह्माजीको प्रणाम करता हूँ। चन्द्रमाके आधारपर प्रतिष्ठित तथा योगमूर्तिधारी पितृगणोंको मैं प्रणाम करता हूँ। साथ ही सम्पूर्ण जगत्के पिता सोमको नमस्कार करता हूँ तथा अग्निस्वरूप अन्य पितरोंको भी प्रणाम करता हूँ; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोममय है। जो पितर तेजमें स्थित हैं, जो ये चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं तथा जो जगत्स्वरूप एवं ब्रह्मस्वरूप हैं, उन सम्पूर्ण योगी पितरोंको मैं एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करता हूँ। उन्हें बारंबार नमस्कार है। वे स्वधाभोजी पितर मुझपर प्रसन्न हों। **[मार्कण्डेय-महापुराण]**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३-२०२४, सूर्य-दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिशेष ५।४५ बजेतक	बुध	आर्द्रा रात्रिमें ११। २ बजेतक	२७ दिसम्बर	× × × ×
द्वितीया अहोरात्र	गुरु	पुनर्वसु ,, १२। ३२ बजेतक	२८ ,,	**कर्कराशि** सायं ६। ९ बजेसे।
द्वितीया प्रात: ६।४९ बजेतक	शुक्र	पुष्य ,, २। २८ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। ३५ बजेसे, **पू०षा० में सूर्य** रात्रिमें २। २४ बजे, **मूल** रात्रिमें २। २८ बजेसे।
तृतीया दिनमें ८।२२ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ४। ४५ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८। २२ बजेतक, **सिंहराशि** रात्रिमें ४। ४५ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। १८ बजे।
चतुर्थी ,, १०।१४ बजेतक	रवि	मघा अहोरात्र	३१ ,,	× × × ×
पंचमी ,, १२।२० बजेतक	सोम	मघा प्रात: ७। १६ बजेतक	१ जनवरी	**मूल** प्रात: ७। १६ बजेतक, **सन् २०२४ प्रारम्भ।**
षष्ठी ,, २। ३१ बजेतक	मंगल	पू०फा० दिनमें ९।५३ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ३१ बजेसे रात्रिमें ३। ३२ बजेतक, **कन्याराशि** सायं ४। ३२ बजेसे।
सप्तमी सायं ४। ३४ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, १२। २६ बजेतक	३ ,,	× × × ×
अष्टमी रात्रिमें ६। २० बजेतक	गुरु	हस्त ,, २। ४४ बजेतक	४ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ३। ४२ बजेसे।
नवमी ,, ७। ४५ बजेतक	शुक्र	चित्रा सायं ४। ४१ बजेतक	५ ,,	× × × ×
दशमी ,, ८। ४१ बजेतक	शनि	स्वाती रात्रिमें ६। ११ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** प्रात: ८। १४ बजेसे रात्रिमें ८। ४१ बजेतक।
एकादशी ,, ९। ७ बजेतक	रवि	विशाखा ,, ७। १२ बजेतक	७ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें १२। ५७ बजेसे, **सफला एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ८। ५९ बजेतक	सोम	अनुराधा ,, ७। ४१ बजेतक	८ ,,	**मूल** रात्रिमें ७। ४१ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८। २४ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, ७। ४२ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८। २४ बजेसे, **धनुराशि** रात्रिमें ७। ४२ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ७। २१ बजेतक	बुध	मूल ,, ७। १५ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** प्रात: ७। ५२ बजेतक, **मूल** रात्रिमें ७। १५ बजेतक।
अमावस्या सायं ५। ४४ बजेतक	गुरु	पू०षा० ,, ६। २८ बजेतक	११ ,,	**अमावस्या, मकरराशि** रात्रिमें १२। ११ बजेसे, **उ०षा० में सूर्य** रात्रिमें ३। १ बजे।

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२४, सूर्य दक्षिणायन-उत्तरायण, हेमन्त-शिशिर-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ४। ६ बजेतक	शुक्र	उ०षा सायं ५। १९ बजेतक	१२ जनवरी	× × × ×
द्वितीया दिनमें २। ४ बजेतक	शनि	श्रवण ,, ३। ५६ बजेतक	१३ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ३। ९ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ३। ९ बजे।
तृतीया ,, ११।५० बजेतक	रवि	धनिष्ठा दिनमें २। २३ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। ४० बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी ,, ९। ३० बजेतक	सोम	शतभिषा ,, १२।४२ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ३० बजेतक, **मीनराशि** रात्रिशेष ५। २७ बजेसे, **मकरसंक्रान्ति** दिनमें ९। १३ बजे, **खिचड़ी, खरमास समाप्त।**
पंचमी प्रात: ७। ८ बजेतक	मंगल	पू०भा० ,, ११। २ बजेतक	१६ ,,	× × × ×
सप्तमी रात्रिमें २।४१ बजेतक	बुध	उ०भा० ,, ९। २६ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। ४१ बजेसे, **मूल** दिनमें ९। २६ बजेसे।
अष्टमी ,, १२। ४३ बजेतक	गुरु	रेवती प्रात: ७। ५९ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ४१ बजेतक, **मेषराशि** प्रात: ७। ५९ बजेतक, **पंचक समाप्त** प्रात: ७। ५९ बजे।
नवमी ,, ११। ४ बजेतक	शुक्र	अश्विनी ,, ६। ४७ बजेतक	१९ ,,	**मूल समाप्त** प्रात: ६। ४७ बजे।
दशमी ,, ९। ४५ बजेतक	शनि	कृत्तिका रात्रिशेष ५। २१ बजेतक	२० ,,	**वृषराशि** दिनमें ११। ४६ बजेसे, **सायन कुंभराशिका सूर्य** रात्रिमें २। २८ बजे।
एकादशी ,, ८। ५२ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, ५। १४ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। १८ बजेसे रात्रिमें ८। ५२ बजेतक, **पुत्रदाएकादशी (सबका)।**
द्वादशी ,, ८। २८ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, ५। ३६ बजेतक	२२ ,,	**मिथुनराशि** सायं ५। २५ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८। ३४ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ६। २९ बजेतक	२३ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ९। १२ बजेतक	बुध	पुनर्वसु अहोरात्र	२४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। १२ बजेसे, **कर्कराशि** रात्रिमें १। ३० बजेसे, **श्रवणका सूर्य** रात्रिमें ४। १० बजे।
पूर्णिमा ,, १०। १९ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु प्रात: ७। ५१ बजेतक	२५ ,,	**पूर्णिमा, भद्रा** ९। ४६ बजेतक, **माघस्नान प्रारम्भ।**

सुभाषित-त्रिवेणी

कुलीन व्यक्तियोंके गुण

[The qualities of human beings born to noble families]

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः
पुण्या विवाहाः सतताऽन्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति
सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि॥

जिनमें तप, इन्द्रियसंयम, वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार—ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान् (उत्तम) कुल कहते हैं।

Those families are superior to others, the members of which have the following attributes: Meditation or penance; subjugation of senses; a study of the Vedas; performance of Yajna; holy matrimonial alliances; distribution of grains in charity all the time and noble conduct.

येषां हि वृत्तं व्यथते न योनि-
श्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ते कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां
त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि॥

जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषोंसे माता-पिताको कष्ट नहीं पहुँचाते, प्रसन्न चित्तसे धर्मका आचरण करते हैं तथा असत्यका परित्यागकर अपने कुलकी विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान् कुलीन हैं।

The families of repute are never lax in their moral attitudes. Their young members do not cause pain to their parents with their shortcomings. Such families willingly follow the path of Dharma. By rejecting the path of falsehood, these families enhance their prestige.

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च॥

यज्ञ न होनेसे, निन्दित कुलमें विवाह करनेसे, वेदका त्याग और धर्मका उल्लंघन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं।

The families decline if they do not perform Yajna, if they marry in tainted families, if they give up reading the scriptures or if they violate the tenets of Dharma.

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥

देवताओंके धनका नाश, ब्राह्मणके धनका अपहरण और ब्राह्मणोंकी मर्यादाका उल्लंघन करनेसे उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं।

Destroying the wealth of the Devatas, usurping a Brahmin's assets and overstepping the limit of decorum and decency in dealing with the Brahmins, even the highly regarded families come to naught.

ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च॥

भारत! ब्राह्मणोंके अनादर और निन्दासे तथा धरोहर रखी हुई वस्तुको छिपा लेनेसे अच्छे कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं।

Bharata, humiliating the Brahmins or usurping the pledged wealth bring disrepute even to families of status.

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥

गौओं, मनुष्यों और धनसे सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचारसे हीन हैं, वे अच्छे कुलोंकी गणनामें नहीं आ सकते।

The families which, even though endowed with the wealth of cows, human beings or riches, do not maintain a high moral character, cannot be counted among the nobility. [विदुरनीति ४। २३—२८]

कृपानुभूति

ठाकुरजीकी कृपा

गीतामें भगवान् कहते हैं कि जो नित्य-निरन्तर मुझमें लगा रहता है। मेरे आश्रित एवं मुझमें ही समर्पित है, उन भक्तोंकी पूर्ण जिम्मेदारी मैं लेता हूँ। उक्त कथनका मुझे कई घटना-प्रकरणोंसे अनुभव हुआ है। हर प्रसंगसे मेरा आत्मविश्वास प्रबल एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुआ है। हर बार मुझे ऐसा लगा कि शायद शरणागत जब विपदामें पड़ता है तो वह भी विह्वल हो जाता होगा तथा उसकी सारी जिम्मेदारी उसपर आ जाती होगी।

इस सन्दर्भमें मैं एक घटनाका उल्लेख करना चाहूँगा। घटना आजसे लगभग पन्द्रह साल पहलेकी हरिद्वार रेलवे-स्टेशनके प्लेटफार्म तीनकी है। मुझे हरिद्वारसे जयपुर आना था। मेरे साथ तीन महिलाएँ तथा छोटे-मोटे कुल १५ सामान थे। हमारा आरक्षण देहरादूनसे ओखा जानेवाली ट्रेनके कोट नं० ५-६ में था। मैं कुलीसे अपना सामान कोच जहाँ लगता, उसके सामने रखवाकर ट्रेनके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। प्लेटफार्मपर काफी भीड़ थी।

जैसे ही ट्रेन आकर रुकी, भीड़का रेला इस तरह आया कि डिब्बेमें चढ़ना तो दूर वहाँ खड़े रहना भी मुश्किल था। हम सभी असहायसे प्लेटफार्मपर खड़े थे। गाड़ी भी सिर्फ पाँच मिनट रुकती थी। मेरी साथवाली दोनों महिलाएँ तो भीड़के रेलेमें डिब्बेमें चढ़ गयी थीं। मैं और मेरी पत्नी सामानके साथ नीचे ही खड़े थे। भीड़को देखकर डिब्बेमें चढ़नेकी आशा छोड़कर उन चढ़ी हुई महिलाओंको कैसे वापस उतारें, उसकी चिन्ता होने लगी। वे दोनों भोली महिलाएँ कभी घरसे इतनी लम्बी यात्राके लिये नहीं निकली थीं। उनको सफरके विषयमें कुछ ज्ञान भी न था। उनकी टिकटें मेरे ही पास थीं और उनके पास पैसे भी न थे। सबसे बड़ी समस्या यह थी कि मैं उनको ट्रेनसे उतारूँ कैसे? यह कोढ़में खाजवाली बात हो गयी। अभी मैं यह सोच ही रहा था कि किसीने मुझे इतनी जोरसे धक्का मारा कि मेरे हाथमें पकड़ी हुई लड्डूगोपालकी छबड़ी छिटक गयी। लड्डूगोपाल एवं उनका सारा सामान प्लेटफार्मपर बिखर गया। अब तो रही-सही चढ़नेकी आशा भी खत्म हो गयी थी। मैं परेशान एवं चिन्तित तो था ही। गोपालपर गुस्सा आ रहा था। मैं मन-ही-मनमें बुदबुदाया—'गोपाल, कहाँ तुम्हें मुझे इस संकटमें सम्भालना चाहिये। मैं जैसे व्याकुल हूँ तुम्हें भी व्याकुल होना चाहिये और कहाँ तुम खुद ही बिखर पड़े हो!' गाड़ीका सिगनल हो गया था और गाड़ी चल पड़ी। मैंने गोपाल एवं उनका सामान समेटनेकी जगह एक बार फिर उन दोनों महिलाओंको उतारनेकी आखिरी कोशिश की। डिब्बेके अन्दर जाना तो सम्भव नहीं था, मैं प्लेटफार्मसे ही जोर-जोरसे उनका नाम लेकर पुकारने लगा। डिब्बेके द्वारपर खड़े लोगोंसे भी चेन खींचनेकी विनती कर रहा था। भीड़ एवं कोलाहल इतना था कि किसीको किसीकी सुननेकी या देखनेकी फुर्सत कहाँ थी!

अब तो मेरा अहं एवं कर्तापन जवाब दे चुका था। मैं हताश एवं निराश-सा जैसे ही मुड़ा, मैंने पाया कि मेरा पूरा सामान एवं पत्नी डिब्बेमें चढ़ चुके थे। गाड़ीकी स्पीड कम हो गयी थी। एक देवदूत एवं देवी हाथमें गोपालकी छबड़ी लिये मुझे मधुर-मधुर मुसकानके साथ कह रहे थे कि 'चढ़ो-चढ़ो, आप भी चढ़ो'। उन देवदूतके साँवले-सलोने चेहरेपर गजबका तेज, आँखोंमें अलौकिक दीप्ति, मनोहर चितवन एवं अनुपम चेहरेकी मधुरिमा देखकर मुझे लगा यह कोई साधारण आदमी तो हो नहीं सकते। जरूर जिसे हम परम इष्ट, निर्गुण, अखण्ड एवं अनादि जो भी कह लें, यह तो मेरे ठाकुर एवं ठकुराइन ही हैं, जो अपनी जिम्मेदारीको बखूबी निभा रहे हैं। आनन्दके कारण मुझे कुछ क्षणके लिये देहकी सुधि न रही। जब स्मृति लौटी तो दौड़कर दरवाजेके बाहर देखा; लेकिन तबतक ट्रेन गति पकड़ चुकी थी तथा प्लेटफार्म काफी पीछे छूट गया था। [**श्रीश्यामसुन्दरजी गगड़**]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

निष्काम सहायता

यह घटना वर्ष २०११ की है। होलीकी छुट्टियाँ आनेवाली थीं। मैंने अपनी धर्मपत्नी और पुत्र (जो मात्र २ वर्षका था)-को साथ लेकर तिरुपति-दर्शनके लिये जानेका कार्यक्रम बना रखा था। बेंगलुरु नगरमें ही मेरी बुआके पुत्र एक बड़ी कम्पनीमें अच्छे पदपर कार्यरत थे तथा वहाँसे ही वे भी तिरुपति आ रहे थे। परंतु किसी कारणवश उनका आना नहीं हो पाया और मुझे अपने परिवारके साथ अकेले ही तिरुपति जाना पड़ा। एक तो भाषाका अन्तर तथा उसपर प्रथम बार इतने बड़े तीर्थस्थलपर एक छोटे बच्चेके साथ जाना था। मैं अन्दर-ही-अन्दर बहुत घबरा रहा था, परंतु कार्यक्रममें कोई भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। दर्शनके लिये टिकट तो पहलेसे ही इंटरनेटपर करवा रखा था, परंतु जब हम ऊपर तिरुमला पहुँचे, तो इतना अपार जनसैलाब देखकर होश उड़ गये। खैर! किसी तरह पूछते हुए हमने लाइन ढूँढ़ी तथा उसमें लग गये। करीब २ घण्टे हो गये और अभी भी श्रीवारी मन्दिर दूर था। उस समय वहाँपर मैं अकेला ही हिन्दीभाषी था और मेरे आस-पास सभी लोग दक्षिण भारतीय थे, जो अंग्रेजी भी नहीं समझ पा रहे थे। मेरा पुत्र भी थककर गोदमें सो गया तथा हम असमंजसमें रहे कि कहाँ जायँ, किससे पूछें कि दर्शन कैसे होते हैं, कुछ घबरा-से रहे थे। तभी मेरे कन्धेपर किसीने हाथ रखा। मैं मुड़ा तो देखता हूँ कि एक व्यक्ति, जिनकी आयु यही कोई ५५ से ६० वर्षकी रही होगी, हाथमें पानीका गिलास लिये मेरी तरफ बढ़ा रहे हैं। उनका मुख तेजसे चमक रहा था, मस्तकपर बालाजीका तिलक देदीप्यमान था और आँखोंपर सुनहरे रंगका चश्मा था। वे बोले—घबराओ मत बेटा! मैं जयपुरसे हूँ और यहाँ प्रतिमास दर्शन करने आता हूँ। मेरे साथ-साथ आओ, मैं तुम्हें सब बता दूँगा। वे बोले—छोटे बच्चेको लेकर थक गये होंगे, परंतु चिन्ता न करो, मैं जैसा बताऊँ वैसे ही लाइनमें मुड़ना। अब मन्दिर अधिक दूर नहीं है और मैं यहाँका चप्पा-चप्पा जानता हूँ। कुछ ही समयमें हम सब महाद्वारसे अन्दर पहुँचे और सारा वातावरण 'गोविन्दा! गोविन्दा! गोविन्दा!'-के नामस्मरणसे गूँज उठा। वे महामना जैसे-जैसे बताते गये, हम दोनों वैसे-वैसे चलते गये। बंगारू वाकिलीपर पहुँचकर हम दोनोंने प्रभुके अति सुन्दर स्वरूपके नयनाभिराम दर्शन किये और अन्तर्मनको तृप्त किया। बाहर आये तो पत्नी बोली कि हरिदर्शनके बाद माता-पिताके चरण-स्पर्श करने चाहिये तो वह तो दिल्ली जाकर करेंगे, सो यहाँ उन जयपुरवाले महोदयके चरण-स्पर्श कर लेते हैं।

परंतु ये क्या, वह तो कहीं दिखे ही नहीं। बहुत ढूँढ़ा वह कहीं भी नहीं मिले। अब मुझे उनकी बात स्मरण हो आयी, जब उन्होंने कहा था कि—'मैं यहाँका चप्पा-चप्पा जानता हूँ।'

आज भी वह दिन, वह समय, वह यात्रा स्मरण हो आती है; तो मैं पुलकित हो जाता हूँ।

मैं सोचता हूँ कि या तो वे स्वयं प्रभु तिरुपति बालाजी ही थे, या उनके द्वारा प्रेरित कोई महामानव! यदि अनजानकी निष्काम सहायता करनेवाले ऐसे लोग संसारमें दस प्रतिशत भी हो जायँ तो यह दुनिया स्वर्गसे भी बढ़कर सुन्दर हो जाय। [**श्रीशैलेश मोहनजी**]

(२)

सफाईकर्मीकी ईमानदारी

पिछले मई महीनेमें मैं सपत्नीक हरिद्वार, केदारनाथ, बदरीनाथ एवं ऋषिकेशकी धार्मिक यात्रापर था। इस यात्राका मुख्य उद्देश्य बाबा केदारनाथ एवं भगवान् बदरीनारायणके दर्शन करना था। दर्शनके पहले ही मुझे भगवान्‌की असीम कृपाकी अनुभूति हुई।

मेरी काफी दिनोंसे दोनों धामोंके दर्शनकी उत्कट इच्छा थी। इसी सन्दर्भमें पिछले १६ दिसम्बर २०२२ को हम पाँच मित्रोंने यह निर्णय लिया कि २०२३ में कपाट खुलनेपर दोनों धामों (केदारनाथ-बदरीनाथ)-की सपत्नीक यात्रा की जाय और भगवान्‌के दर्शनका लाभ लिया जाय। इस सन्दर्भमें सारी तैयारियाँ दिसम्बर २०२२ से ही शुरू हो गयीं और हमने कई ट्रैवल एजेण्टोंसे सम्पर्क किया। लेकिन इसी बीचमें जोशीमठमें पहाड़ दरकने शुरू हो गये। चूँकि जोशीमठ होकर ही केदारनाथ जाना

है, इसलिये इस आशंकासे भयभीत होकर मेरे चार मित्रोंने सलाह दी कि २०२३ की प्रस्तावित दो धाम यात्राको २०२४ तकके लिये स्थगित कर दिया जाय। ऐसा कर तो दिया गया, लेकिन मेरा मन बहुत दुखी हो उठा। मुझे लगा कि बाबा केदारनाथ मुझे बुला रहे हैं। लालसा भी थी कि बारहमें-से एकमात्र बचे ज्योतिर्लिंग और एकमात्र बचे धामके दर्शनसे मैं वंचित हो रहा हूँ। इसके पहले मैं सपत्नीक ग्यारह ज्योतिर्लिंगों और तीन धामों—रामेश्वरम्, जगन्नाथपुरी एवं द्वारकाके दर्शन कर चुका था। अत: मैंने निर्णय लिया कि अब चाहे जो भी हो, मैं अकेले ही पत्नीके साथ यात्रापर जाऊँगा। पूजा करनेके समय सुबहमें मैंने माँ भगवती, बाबा भोलेनाथ एवं भगवान् विष्णुसे विनती की कि मैंने यात्राका निर्णय ले लिया है और भगवन्! आप मेरी यात्राको सफल करें।

इसके बाद मैंने अनुभव किया कि मुझमें एक स्फूर्ति-सी आ गयी। फिर मैंने सारी व्यवस्थाओंको सिर्फ अपनी पत्नी और अपने दृष्टिकोणसे करना आरम्भ किया। ट्रैवल एजेण्टसे बात करके यात्राहेतु रजिस्ट्रेशन, होटलोंकी व्यवस्था, टैक्सीकी व्यवस्था, केदारनाथमें फाटासे हेलीकॉप्टर-टिकट आदिकी सारी व्यवस्था कर ली। यह सुनिश्चित हुआ कि ८ मईको गाजियाबादसे निकलूँगा और यात्रा पूर्ण करनेके बाद १४ मईकी शामतक घर वापस आ जाऊँगा।

मैं नित्यप्रति स्थानीय पार्कमें प्रात: भ्रमणके लिये जाता हूँ और वहाँ लगभग ढाई घंटे समय व्यतीत करता हूँ। ७ मईको मैं रोजकी तरह पार्क गया और नियमित समयपर घर लौट आया, तकरीबन साढ़े दस बजेके आसपास मैंने कहीं फोन करना चाहा, तो मुझे फोन नहीं मिला। मैंने सब जगह ढूँढ़ लिया, परंतु फोनका कहीं पता नहीं चला। अगले दिन ८ मईको प्रात: यात्रापर निकलना था और उसी फोनमें यात्राका रजिस्ट्रेशन, ट्रैवल एजेण्टका नम्बर, टैक्सी ड्राइवरका नाम एवं नम्बर, हरिद्वार, केदारनाथ, बदरीनाथ, रुद्रप्रयाग एवं ऋषिकेशके होटलोंका पता तथा नम्बर आदि था, मैंने दूसरी जगह कहीं 'सुरक्षित' भी नहीं किया था। मैं काफी परेशान हो गया। मुझे लगा कि मेरा फोन कहीं गिर गया है, फोन कीमती था और डर था कि यदि किसीको मिला भी होगा तो उसने फोनका स्विच ऑफ कर दिया होगा। मैंने भगवान् भोलेनाथका स्मरण किया कि भगवन्! आप ही मेरी यात्रा सफल करो। ऐसा ध्यान करके मैंने पत्नीके फोनसे अपने नम्बरपर डायल किया। सुखद आश्चर्य कि उधरसे किसी महिलाने फोन उठाया। मैंने उन्हें बताया कि यह फोन मेरा है और उनके पास कैसे पहुँचा? महिलाने पहले मुझसे पूछा कि यदि यह फोन आपका है तो आपने यह फोन कहाँ छोड़ा था? मैंने बताया कि मैं सुबहके समय पार्क गया था और सम्भव है कि वहीं गिर गया हो। तब महिलाने बताया कि उसका नाम पुष्पा है और वह पार्ककी सफाई कर्मचारी है, उसने फोन गिरा हुआ देखा और उठाकर रख लिया तथा वह फोनके वास्तविक मालिकके फोनकी प्रतीक्षा ही कर रही थी। मैं उस सफाई कर्मचारीकी ईमानदारीका कायल हो गया। मैं उलटे पाँव पार्क गया और वहाँ श्रीमती पुष्पाको ढेर सारा धन्यवाद देकर अपना फोन वापस पाया तथा उनकी ईमानदारीको यथोचित तरीकेसे सम्मानित भी किया।

यह सब कुछ माँ भगवती, भगवान् भोलेनाथ और भगवान् विष्णुकी असीम अनुकम्पा एवं आशीर्वादसे ही सम्भव हो पाया अन्यथा फोन न मिलनेकी स्थितमें यात्रामें व्यवधान निश्चित था। ८ मईको योजनानुसार मैं सपत्नीक यात्रापर निकल पाया और दर्शनके पश्चात् बिना व्यवधानके नियत तिथि १४ मईको हम घर वापस आ गये। मुझे ऐसा लगा, कि एक बार दृढ़ निश्चय कर लेनेके बाद प्रभुने सारे विघ्नोंको दूर कर दिया। इस अनुकम्पाके लिये उनका बहुत-बहुत आभार एवं धन्यवाद। साथ ही उस महिला सफाईकर्मीकी अनुकरणीय ईमानदारीके लिये कोटि-कोटि धन्यवाद! आज जबकि सगे-सम्बन्धी, मित्र, परिचित, पड़ोसी भी थोड़े-से स्वार्थके लिये बेईमानी कर लेते हैं, ऐसेमें उस अपरिचित महिलाका यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

[श्रीअवधेशकुमारजी]

(३)

दूसरेका धन मिट्टीका ढेला

जीवनमें कई बार ऐसे अवसर आते हैं कि मन सोचनेपर विवश हो जाता है कि ये घटनाएँ बस यूँ ही घटित हो गयीं या फिर कोई ईश्वरीय माया है। कहते

हैं कि कलियुगमें हर ओर केवल स्वार्थ, झूठ, कपट और अधर्मका राज होगा और ऐसा प्रायः देखा भी जाता है। मुझे महानिर्वाण-तन्त्रका एक छन्द याद आ गया, जहाँ भगवान् शिवशंकर देवी भगवतीको कलियुगके जीवोंकी विशेषता बताते हैं—

उच्छृङ्खला मदोन्मत्ता पापकर्मरताः सदा।
कामुका लोलुपाः क्रूरा निष्ठुरा दुर्मुखाः शठाः॥

किंतु इसीके बीच कुछ घटनाएँ पुनः ईश्वरकी सत्यनिष्ठ सत्ताके प्रति अपना विश्वास दृढ़ करती हैं कि चाहे जितना अधर्म हो, कहीं-न-कहीं धर्मका एक दीपक तो जल ही रहा है। कलकी बात है, मैं किसी कार्यवश स्टेट बैंककी एक शाखामें गया था। मैनेजरके पास बैठा बातें कर रहा था कि एक कर्मचारीने मैनेजर साहबसे कहा कि एक युवक और युवती आपसे मिलना चाहते हैं, उनको एटीएमसे सम्बन्धित कोई बात करनी है। मैनेजर साहबने मेरी उपस्थितिके कारण शिष्टाचारवश उस कर्मचारीसे कहा कि डॉक्टर साहबके कामके बाद मिल लेंगे। तभी मेरी दृष्टि उनके कमरेमें लगे शीशेके बाहर गयी तो देखा वही युवक-युवती खड़े थे और थोड़ा व्यग्र भी थे, तो मैंने मैनेजर साहबसे कहा कि मैं बैठा हूँ, आप उन दोनोंसे मिल लें, शायद कोई बहुत जरूरी बात है। मैनेजर साहबने स्वाभाविक रूपसे कहा कि 'अरे, कुछ नहीं डॉक्टर साहब! एटीएमसे पैसा नहीं निकला होगा और खातेसे कट गया होगा; ऐसी घटनाएँ यहाँ रोज होती हैं, आप परेशान न हों।'

पता नहीं क्यों मैं सहज नहीं हो पा रहा था। मैंने फिर एक बार बाहर देखा तो पाया कि युवती थोड़ा ज्यादा बेचैन थी और उसने हाथमें कुछ रुपये भी पकड़ रखे थे। मैंने फिरसे मैनेजर साहबसे कहा कि उन दोनोंसे मिल लें। मैनेजर साहबने उन्हें अन्दर बुलाया, तो वे दोनों पूरे शिष्टाचारसे नमस्कार करके मिले। मैनेजर साहबने पूछा कि क्या समस्या है? जल्दी बोलिये, मेरे पास बहुत काम है। उस युवतीने जो घटना बतायी, उसे सुनकर हम दोनोंकी आँखें एक सुखद आश्चर्यसे खुलीकी खुली रह गयीं। उस युवतीने बताया कि कल रात वह स्टेट बैंकके एक एटीएमसे दस हजार रुपये निकालनेके लिये गयी थी। एटीएम कार्ड डालनेके बाद जब उसने दस हजार रुपये भरे तो एटीएमसे दसके बजाय बीस हजार रुपये निकल आये। उसने दो-तीन बार गिने ताकि कोई भ्रम न हो, फिर भी रुपये बीस हजार ही थे। उसने अपने साथ गये युवकको भी गिनाये तो उसने भी निश्चित किया कि रुपये बीस हजार ही हैं। उसने इस घटनाको एटीएमके गार्डको बताया, तो उसने कहा कि मैडम! बैंक जाकर बात कीजिये, मैं तो कुछ नहीं कर पाऊँगा। यहाँ ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसीके पैसे न निकले हों। कम-से-कम मेरी जानकारीमें तो ऐसी कोई घटना नहीं आयी है।

हम दोनों रातमें वहाँसे चले आये और आज दिनमें बैंककी अपनी शाखामें आये थे, जहाँ उनका बैंक खाता था। मैनेजर साहबने उन दोनोंको ससम्मान अपने सामने बैठाया और पूरी भावनामें भरकर बोले कि मेरे संज्ञानमें ऐसी घटना आजतक नहीं आयी कि किसी ग्राहकने एटीएमसे अधिक निकले रुपयोंको वापस करनेका प्रयास किया हो। आप दोनों बेजोड़ हो। आपने जो ईमानदारीका परिचय दिया, वह अपने-आपमें एक मिसाल है। उन्होंने उन दोनोंको बहुत धन्यवाद दिया और अपनी पूरी शाखाके सभी कर्मचारियोंको बुलाकर इस घटनाके बारेमें बताया। सभीने उनका अभिवादन किया। बैंकके नियमोंके अन्तर्गत उन्होंने इस घटनाकी कार्यवाही पूरी की। जब वे जाने लगे तो मैंने भी उन दोनोंको प्रणाम किया और कहा कि धरती अच्छे और संस्कारी लोगोंसे कभी खाली नहीं होती। साधुवाद आप दोनोंको!

दूसरेका धन स्वयंके लिये मिट्टी, इस भावनाको अपने हृदयमें रखकर ***'तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा'*** का आश्रय लेकर श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये। नीति-विशारद आचार्य चाणक्य भी परधन और परस्त्रीके विषयमें कुछ ऐसा ही विचार कह गये हैं—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति सः पण्डितः॥

दूसरेकी पत्नीको अपनी माँकी तरह, दूसरेके धनको मिट्टीके समान, सभीको अपने-जैसा जो देखता है, वही पण्डित (ज्ञानी) है। इस संसारमें वही मनुष्य श्रेष्ठ है, जो सभी लोगोंको देह नहीं बल्कि इस संसारमें द्रष्टाकी तरह उपस्थित आत्मा ही मानता है।

[डॉ० श्रीपंकजजी श्रीवास्तव]

मनन करनेयोग्य

सपूत सनातन

बालक सनातनका जन्म उड़ीसामें हुआ था। इसके परिवारमें कुल चार प्राणी थे। सनातनका छोटा एक वर्षका भाई और स्नेहमय माता-पिता। इस सीमित परिवारमें यद्यपि धन-बाहुल्य नहीं था; किंतु थी सरलता, सज्जनता, सदाशयता और परस्पर प्रीति! प्रातः-सायं दम्पती बालकोंको गोदमें लिये भगवच्चर्चा करते। सन्तोषके कारण सुख था, शान्ति थी और पवित्रतापूर्ण जीवन जगदाधार स्वामीकी ओर अग्रसर होता जा रहा था।

उड़ीसामें एक बार दो वर्षोंतक लगातार भयानक अकाल पड़ा। सनातनका क्षेत्र उसकी लपेटसे बच नहीं सका। अन्न-जल और तृणादिके अभावमें मनुष्य और पशु-पक्षी छटपटा-छटपटाकर कालके कराल गालमें जाने लगे। दिन-दोपहर डाके पड़ने लगे। उस समय सनातन कुल ग्यारह वर्षका था और उसके छोटे भाईकी आयु चार वर्षकी थी। पिता सूर्योदयके पूर्व ही घरसे बाहर निकल जाते और सूर्यास्तके बादतक दो-एक मुट्ठी अन्न कठिनाईसे एकत्र कर पाते। उतनेसे किसका पेट भरता। पिता अपनी प्राणप्रिय पत्नी और सन्तानका मुँह देखकर अधीर हो जाता। उसका हृदय विदीर्ण होने लगता; परंतु वह करता ही क्या? वश ही उसका क्या था? भयंकरता यहाँतक बढ़ी कि कई दिनों कुछ भी नहीं मिला। घरकी सारी चीजें बिक चुकी थीं। सनातनके पिताके पास कोई साधन नहीं था। उसने बाहर जानेके लिये अपनी पत्नीसे कहा। पत्नी जानती थी कि इस विवशताने इन्हें जीवनका मोह छुड़ा दिया है। उसने बार-बार मना किया; किंतु एक दिन सनातनके पिता रात्रिमें चुपकेसे चले गये और कहाँ चले गये? कैसे बताया जाय, जब वे पुनः कभी वापस नहीं आये।

ग्यारह वर्षकी आयु कोई अधिक नहीं होती। सनातन तो रुग्ण और जर्जर-सा हो गया था। अन्नके बिना अस्थिपंजरके अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया था उसकी कायामें। उसकी माँ तो शय्यासे सट गयी थी, पर बालक बुद्धिमान् था और था मातृभक्त! माता और भाईकी रक्षाके लिये भीख माँगनेको वह स्वयं निकल पड़ा। प्रतिदिन वह तीन-चार मील चलता और हरित तृण, वृक्षमूल या थोड़ा-बहुत अन्न आदि जो कुछ उपलब्ध होता, सनातन स्वयं न खाकर अपनी जन्मदायिनी जननी और छोटे भाईके लिये ले आता। उन लोगोंको खिलाकर वह बहुत थोड़ा अपने मुँहमें डालता।

शरीर कितना सहता। सनातन मूर्च्छित हो गया। चेतना हुई, पर 'माँ और अबोध भाई?' सनातन उठता और गिर पड़ता। माँ और भाईको अन्न दिये तीन दिन बीत चुके थे। सनातनने पासमें पड़ी पिताकी लाठी उठा ली। उसीके सहारे वह अन्नके लिये चल पड़ा। कुछ दूर जानेपर फिर गिर पड़ा, मूर्च्छित हो गया। चेतना आयी, तो आगे बढ़ा। इसी प्रकार गिरता-पड़ता वह बढ़ रहा था।

'मैया! थोड़ा भात मुझे भी!' सनातनने एक स्त्रीको भात बनाते देखकर अत्यन्त दीन और कातर वाणीमें याचना की। स्त्रीने बालककी ओर देखा। दीनता-दरिद्रता और पीड़ाकी जीवित मूर्ति देखकर स्त्री काँप गयी। वह सिहर उठी, उसका हृदय करुणार्द्र हो गया। उसने थोड़ा भात सनातनको एक पत्तेमें दे दिया। सनातन भात लिये चल पड़ा। गिरा, उठा। फिर गिरा, फिर उठा; पर मातृ-भ्रातृ-प्रेमी बालक सनातन अपने प्राणकी चिन्ता किये बिना लाठीके सहारे भात लिये भागा जा रहा था।

कहते हैं, भूखी माँ भी अपना पुत्र त्याग देती है और भूखी साँपिन अपनी ही संततिको निगल जाती है। सनातन भी भूखसे आकुल था। उसके प्राण वशमें नहीं थे, फिर भी वह स्वयं नहीं खाकर माँ और भाईकी ओर दौड़ा जा रहा था।

'भैया!' छोटा भाई सनातनको देखते ही उसकी ओर लपका। सनातनने थोड़ा-सा भात उसके मुँहमें दे दिया। उसकी आकृतिपर जीवन आ गया। उसने और भातके लिये भाईका हाथ पकड़ा, पर सनातन माँकी ओर बढ़ गया। छोटा भाई चिल्ला उठा। 'क्या है रे!' माँने धीरेसे करवट लेकर कहा। 'थोड़ा भात है माँ!' सनातनने बताया और भात माँके सामने रख दिया।

सनातनकी सर्वथा अशक्य काया और अपने तथा पुत्रके जीवनकी रक्षाके लिये साहस और प्रयत्न देखकर माताकी गड्ढेमें धँसी आँखें गीली हो गयीं। 'भगवान् तेरा कल्याण करें बेटा!' माँने हिचकते हुए गद्‌गद कण्ठसे कहा 'तेरे-जैसे सपूत बड़े भाग्यसे मिलते हैं।' [**कल्याण-वर्ष २७**]

श्रीगीता-जयन्ती [२३ दिसम्बर, २०२३ ई०]

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (गीता ४।७-८)
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता ४।७-८)

'हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।'

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), शनिवार, दिनाङ्क २३ दिसम्बर, २०२३ ई०को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्‌का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (६) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (७) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

गीताप्रेससे प्रकाशित संक्षिप्त चित्रमय शिवपुराण

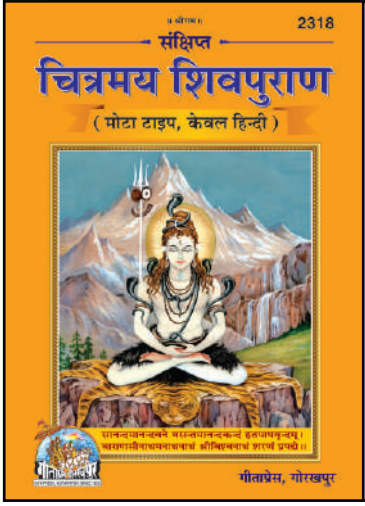

संक्षिप्त चित्रमय शिवपुराण (कोड 2318) [ग्रंथाकार, बड़े अक्षरोंमें, चार रंगोंमें, आर्ट पेपरपर] —215 से अधिक लीलाके रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित किया गया है। इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पंचदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। रंगीन आकर्षक एवं मजबूत डिब्बेमें पैक, विवाह एवं अन्य उत्सवोंपर उपहार देने योग्य। मूल्य ₹1500, **डाकखर्च फ्री।**

प्र० ति० 20-10-2023
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

कल्याणका आगामी ९८वें वर्ष (सन् २०२४ ई०) का विशेषाङ्क

'संक्षिप्त आनन्दरामायणाङ्क'

प्रभु श्रीरामको धर्मका विग्रह कहा गया है '**रामो विग्रहवान् धर्मः**' रामायणोंकी परम्परामें '**आनन्दरामायण**' का विशिष्ट स्थान है। सम्पूर्ण आनन्दरामायणमें सारकाण्ड, यात्राकाण्ड, यागकाण्ड, विलासकाण्ड, जन्मकाण्ड, विवाहकाण्ड, राज्यकाण्ड, मनोहरकाण्ड तथा पूर्णकाण्ड—कुल ९ काण्ड हैं जिनमें १०९ सर्ग एवं लगभग १२,००० श्लोक हैं। इसमें भगवान् श्रीरामकी नवीन लीलाकथाओं, उनकी दिव्य गुणावलीका बड़े सुन्दर ढंग-से वर्णन हुआ है तथा इसमें ऐसी-ऐसी रोमांचक कथाएँ हैं, जिनका अन्यत्र वर्णन नहीं मिलता है। लव-कुशके जन्मके समय भगवान् श्रीरामका विमानसे महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें सीताजीके पास जाना, भारतवर्षके सभी तीर्थोंकी यात्रा, अनेकानेक अश्वमेध यज्ञोंका सम्पादन आदि इस ग्रन्थकी अनमोल निधियाँ हैं। भगवान् श्रीरामकी विविध स्तुतियाँ, मन्त्र, अनुष्ठान, शतनाम, सहस्रनाम, रामस्तवराज, रामकवच, लक्ष्मणकवच, सीताकवच, शत्रुघ्न-भरतके कवच, हनुमत्कवच तथा राम-नामकी महिमा इसमें विशेषरूपसे प्रतिपादित है। घर-घर पढ़ा जानेवाला '**श्रीरामरक्षास्तोत्र**' इसी ग्रन्थसे लिया गया है। '**श्रीराम जय राम जय जय राम**' इस महामन्त्रको बतानेवाला श्लोक इस ग्रन्थमें कई बार आवृत हुआ है। इसमें श्रीरामके राज्यकालकी अनुपम लीलाओंका चित्रण बड़े सुन्दर ढंगसे किया गया है। आशा है, पूर्वकी भाँति यह सभीके लिये संग्राह्य एवं उपयोगी होगा।

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे

पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें।

09235400242 / 244 फोन एवं **8188054404, 9648916010 WhatsApp** भी कर सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005

आवश्यक सूचना

पाठकोंसे निवेदन है कि गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुस्तकें अपने निकटके पुस्तक-विक्रेता, स्टेशन-स्टॉल अथवा गीताप्रेसकी निजी दूकानोंसे ही खरीदें, इससे डाकखर्च और समयकी बचत होगी।

Online पुस्तकें कूरियर/डॉकसे गीताप्रेसकी अधिकृत website:gitapress.org अथवा gitapressbookshop.in से ही मँगवायें। यहाँसे आपको छपे मूल्यपर ही निर्धारित डॉकखर्च जोड़कर पुस्तकें भेजी जाती हैं।

आजकल बहुत-सी ई-कॉमर्स कम्पनियोंके प्लेटफार्मपर गीताप्रेसकी पुस्तकें बहुत अधिक मूल्यपर अथवा कई गुना मूल्यपर बेची जा रही हैं। ऐसी परिस्थितिमें किसी अन्य प्लेटफार्मपर पुस्तकोंका ऑर्डर करते समय gitapress.org पर पुस्तकोंका मूल्य अवश्य देख लेवें।

e-mail : **booksales@gitapress.org**—**थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।**

Gita Press web : **gitapress.org**—**सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।**

गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—

www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)